

**THE BOOK WAS
DRENCHED**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180955

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83
S 53 L Accession No. H 3099
Author शर्मा, यशवन्त .
Title ललित . 1959 .

This book should be returned on or before the date
last marked below.

ललिता

यज्ञदत्त शर्मा

१९५६

साहित्य-प्रकाशन, दिल्ली

प्रकाशक
हित्य प्रकाशन
लीवाड़ा, दिल्ली ।

प्रथम संस्करण १९४०
द्वितीय संस्करण १९४७
तृतीय संस्करण १९५७
चतुर्थ संस्करण १९५९
मूल्य : तीन रुपया आठ आना

मुद्रक
रामाकृष्णा प्रेस,
कटरा नील, दिल्ली

“बेटी तुम पूजा के लिए फूल कहाँ से लाती हो ?”

“गाँव के ही बाग से पिताजी ! सभी तरह के फूल तो हैं उस बाग में । बड़ा सुन्दर बाग है । इतना मन लगता है उस बाग में कि कम कुछ पूछो नहीं ।” इठलाते हुए ललिता ने कहा ।

“किसी ने कभी फूल तोड़ने को मना तो नहीं किया बेटी !”

“मना क्यों करता कोई पिताजी ! मैं तो पूजा के लिए फूल लाती हूँ । अपने लिए तो लाती नहीं जो कोई मना करे । खेलने के लिए भी नहीं लाती । फूल देवता पर चढ़ाये जाते हैं । बागवालों को भी अपने को धन्य समझना चाहिए कि उनके बाग के फूल कितने स्वच्छ भाव से देवताओं को अर्पण किये जाते हैं ।” गम्भीर होकर ललिता कह रही थी । उसका मन एकाग्र होकर इस समय देवता के चरणों में पहुँच चुका था ।

“तू बड़ी बावली है ललिता ! माली और बागवाले इस बात को नहीं देखते । वे लोग अपने बाग को यों ही खराब नहीं होते देते ।”

“देते कैसे नहीं भला पिताजी ! मुझे तो कभी मना नहीं करते और फिर देवता पर चढ़ने के लिए जो चीज जाती है वह भला कहीं खराब होती है ? आप ही तो एक दिन कहते थे कि बेटी ! प्यारी से प्यारी वस्तु भी देवता पर चढ़ाने में संकोच नहीं करना चाहिये ।” आश्चर्य-चकित ललिता ने कहा । “आप ही आज ऐसी बातें कह रहे हैं ।”

“अपनी ही चीज पर तो अधिकार होता है बेटी ! दूसरे की चीज तो इस प्रकार नहीं चढ़ाई जा सकती ।” वृद्ध बोला ।

“लेकिन बाग भी तो परमात्मा का है ! हम दूसरे से रुपया-पैसे तो माँगने नहीं जाते । भोग तो हम अपने ही पैसे का लगाते हैं । फिर दूसरे की चीज क्यों कहते हैं आप ?” हलका-सा तर्क प्रस्तुत करते हुए ललिता बोली ।

“बेटी बाग तो बागवाले का है । वह चाहे फूल दे चाहे न दे ।”

“परन्तु हम बाग पर अधिकार कब करना चाहते हैं पिताजी ! रही फूलों की बात सो उनके लिए वह मना नहीं कर सकते । वह बड़े सज्जन आदमी हैं !”

“क्या ?……बड़े सज्जन आदमी हैं ? तमाम जमींदारीवाले तो उनकी बुराई करते हैं और तू कहती है कि बहुत सज्जन हैं ।” बूढ़ा चौंक पड़ा यह सुनकर ।

“मुझे तो फूल लाने को कभी मना नहीं करते पिताजी ! अब आपकी पूजा का समय निकला जा रहा है । आप पूजा प्रारम्भ कर दीजिये ।”

“करता हूँ बेटी !”

रामनाथ ने पूजा प्रारम्भ कर दी और ललिता वहाँ से निकलकर चुपके से गंगा नहाने चली गई ।

ललिता रामनाथ की इकलौती कन्या थी । इसकी माँ इसे दस महीने की छोड़कर स्वर्ग सिधार गई थी । तब से रामनाथ के जीवन का यही एक सहारा थी ।

रामनाथ एक दीन ब्राह्मण था, परन्तु था अच्छे कुल का । उसका अधिकतर समय पूजा-पाठ में ही कटता था । घर की देख-भाल ललिता को करनी होती थी । घर में केवल दो ही प्राणी थे । पूजा का सब सामान ललिता जुटा देती थी और रामनाथ कृष्ण-मूर्ति के सम्मुख आँखमींच कर बैठ जाता था । यह उसका नित्य का नियम था ।

लोकनगर से गंगा बहुत दूर नहीं थी। यही दो फर्लाङ्ग होगी। लेकिन अब ललिता को पहुँचने में कुछ समय लगने लगा था। पहले वाला चुलबुलान अब किसी विशेष सौन्दर्य-भार से दबता जा रहा था। यौवन की सरिता अधिक जल से पूर्ण होकर छिछलेपन की चंचलता को छोड़कर गाम्भीर्य में पदार्पण कर चुकी थी।

उमंग थी जीवन की—नया उभार, नई आशा, नया उत्साह।

गंगा भी उमंगों से पूर्ण होकर बह रही थी। दो सरिताओं का संगम हो गया।

अब त्रिवेणी बनना चाहती थी।

पंकज ने दूर से देखते ही कहा, “ललिता बड़ी भूठी हो तुम। अब मैं तुम्हारी बात का कभी विश्वास नहीं करूँगा। बस मैंने कह दिया, मैं कभी विश्वास नहीं करूँगा तुम्हारा।” भूठ-भूठ में रूठने का प्रदर्शन करते हुए कह रहा था पंकज।

“क्यों?” मुस्कराते हुए ललिता ने कहा।

“तुमने भूठ जो कहा।” भौ चढ़ाए हुए पंकज बोला।

“क्या भूठ कहा?” तुनककर ललिता बोली।

“यही कि तुम सुबह बाग में आओगी।”

“वाह-जी-वाह! बाग में न आती तो भला पिताजी की पूजा कैसे होती? दो जवाब?”

“क्यों, पूजा में बाग क्या करता है?” चकित होकर पंकज ने पूछा।

“वाह-जी-वाह, बाग से फूल ले गई तभी तो पिताजी ने पूजा प्रारम्भ की और जब उन्होंने पूजा शुरू कर दी तब मैं नहाने के लिए आई। आप कहिए अपनी बात। मैंने कितनी ही देर तक इन्तज़ार किया और आप नहीं पधारे।”

ललिता के इस वाक्य में मधुर व्यंग्य था।

“सच कह रही हो ललिता।”

“और नहीं तो क्या झूठ ?”

“अच्छा मेरी कसम खाओ ।”

“कसम क्यों खाऊँ ? क्या मैं झूठ बोल रही हूँ जो कसम खाऊँ । कसम झूठे आदमी खाते हैं ।” अकड़कर ललिता बोली ।

पंकज मुस्कराता रह गया ; उसका हृदय आनन्द-विभोर हो उठा । अन्दर-ही-अन्दर एक मधुर रस की धारा बह निकली ।

“आप देर से सोकर उठे होंगे । यही बात है न ?” मुस्कराकर ललिता ने पूछा ।

“हाँ ललिता ! क्या बतलाऊँ कल होली थी न ।”

“फिर क्या हुआ होली थी तो । होली क्या देर तक सोने के लिए कह गई थी ?”

“फिर क्या ? उधर बाजारवालों की चौपाल पर कुछ लोगों से मिलने चला गया । उन्होंने विजया छान रक्खी थी । एक गिलास पिला दी ।” स्वाभाविकता के साथ पंकज ने कह तो दिया, परन्तु किसी भावी आशंका से उसका तन्नाम बदन सिहर उठा । उसे लगा कि मानो उसे बिजली के तार ने छू लिया ।

“अच्छा ! यों कहिए तो आप भाँग का भी शौक करते हैं ।” कुछ चिढ़कर ललिता बोली ।

“शौक-वौक कहाँ ललिता ? यों ही फँस गया था उन लोगों के चक्कर में । मुझे कोई शौक तो है नहीं भाँग का । कभी पहले तो देखा नहीं होगा तुमने मुझे भाँग पिये ।” दीन भाव से पंकज बोला ।

ललिता का मुँह उतर गया, “आप अच्छे आदमी नहीं हैं । अब मैं जान गई बस ।” गर्दन झुकाकर ललिता ने कहा । नशा करना उसके नजदीक पाप था । वह यह सहन नहीं कर सकती थी कि पंकज कोई पाप करे ।

पंकज के दिल पर एक धक्का लगा । उसने अपने को सँभालते हुए कहा, “यह तुमने कैसे कह दिया ललिता ? क्या दुनिया में मजबूरी नहीं

होती ? मजबूरी से भी तो कभी-कभी कुछ काम करने पड़ जाते हैं । मैंने अपनी इच्छा के विरुद्ध ही तो यह कार्य किया है ।” पंकज अपनी ग़लती इन शब्दों के द्वारा मंज़ूर कर रहा था ।

“मजबूरी भले काम में होती है, बुरे काम में नहीं ।” कहकर ललिता ने मुँह नीचा कर लिया । पंकज ने देखा कि ललिता के कोमल हृदय पर उसके इन साधारण से शब्दों से असाधारण आघात पहुँचा है ।

“मजबूरी भी भले काम में होती है बुरे में नहीं”, पंकज ने अपने मन ही में दुहराया और उसे भी लगा कि वास्तव में बुरे काम के करने में क्या मजबूरी । वह उन लोगों को टका-सा जवाब दे सकता था ।

सच ही तो कह रही है ललिता—

आखिर बुरे काम में क्या मजबूरी ? मुझे भाँग नहीं पीनी चाहिए थी—हरगिज़ नहीं पीनी चाहिए थी ।

परन्तु इतने मित्रों का आग्रह था । क्या मुझे उनका अपमान करना चाहिए था । उनके आग्रह का इसके माने यह हुए कि कोई मूल्य ही नहीं ।

फिर भाँग पीना कोई शराब पीना नहीं है । उत्सव के दिन सभी पीते हैं—कौन नहीं पीता ?

मैं रोज़ाना पीने का तो आदी नहीं हूँ ।

लेकिन इसे अच्छा नहीं कहा जा सकता । यह है बुरी ही चीज़ । कोई भी नशा करना क्या अच्छी चीज़ है ? पंकज तर्क से अपने भाँग पीने का मन-ही-मन समर्थन करता, परन्तु उसका हृदय उस तर्क को पानी के रेले के समान, कच्ची दीवार की तरह बहा ले जाता । उसका समर्थन उसके अपने मन में दृढ़ता नहीं पा रहा था ? ज्योंही कुछ विचार कर वह अपने कार्य की खराबी पर लीपा-पोती करने का प्रयास करता त्योंही उसकी नज़र ललिता के चेहरे पर पड़ती और वह विचार काफ़ूर हो जाता ।

पंकज तनिक विचलित सा हो उठा । उसका मन अन्दर-ही-अन्दर न जाने कैसा हो गया ।

“अब कभी नहीं पीऊँगा ललिता ! तुम नाराज न हो । देखो तुम तनिक-तनिक-पी बात पर रूठ जाती हो । मुझे यह बात अच्छी नहीं लगती ।” बड़े दीन भाव से पंकज ने कहा ।

“फिर तुम भी तो इसी तरह की बातें करते हो । उस दिन तुम कहते थे कि तुमने मित्रों के आग्रह से अंडा खा लिया था ।

फिर ऊपर से दनील भी देनी शुरू कर दी थीं कि अंडा खाना पाप नहीं है । अंडा बेजान चीज होती है । अंडा खाद्य पदार्थ है । दुनिया भर इसे खाती है । कौन इससे बचा हुआ है ? आज आपने विजया से प्रेम बढ़ा लिया । सब जानो मैं आइन्दा कभी ऐसी बातें सुनूँगी तो मुझे बहुत दुःख होगा ।” ललिता ने स्नेहवश कहा ।

“क्या कह रही हो ललिता ! तुम बिलकुल बावली हो । बातों को जरा भी नहीं समझती ।” भयभीत सा होकर पंकज बोला ।

“ये बातें मैं समझना भी नहीं चाहती ।”

“फिर नाराज हो गईं । बस नाराज होने के अलावा तुम्हें और कुछ आता ही नहीं । अच्छा मैं जाता हूँ” तुनककर पंकज चला गया ।

ललिता की आँखें नहीं बदलीं । वह समझ रही थी कि उसने उचित ही कहा, जो कुछ भी कहा ।

आखिर फिर क्यों भाँग पी उन्होंने ?

भाँग क्या कोई अच्छी चीज है ? कुछ मजा आता है इसके पीने में । अपनी भी सुधि नहीं रहती । इतनी देरी से सोकर उठते हैं । बहुत अच्छे रहे । मित्र-मंडली तो कल शराब और परसों कुछ और भी कहेगी । तो क्या उसके कहने से...।’

नहाते-नहाते इसी प्रकार न जाने कितने विचार ललिता के दिमाग में चक्कर लगा गये ।

जल्दी-जल्दी नहाई और झट से धोती बदलकर धर की तरफ दौड़ी। मन में ध्यान आया, पिताजी सन्ध्या कर चुके होंगे। हवन भी शायद कर लिया हो।

आज बातों-ही-बातों में कितना समय निकल गया। बहुत देर हो गई।

रोज कुछ-न-कुछ कर ही आते हैं। भला अंडा खाना और भाँग... राम-राम कहीं पिताजी सुनलें तो क्या कहें ?

ललिता घर पहुँची तो रामनाथ हवन कर चुके थे। “बेटी आज नहाने में बड़ी देर कर दी तुमने। खाना भला कब बनेगा ?” प्यार से कहा।

“अभी बनाती हूँ पिताजी। आप जानते ही हैं कि मैं कितनी शीघ्रता से काम करती हूँ। गंगा पर आज देर हो गई। झटपट चूल्हे के पास लकड़ियाँ रखते हुए ललिता ने कहा।

“बेटी ज्यादा देर मत लगाया करो नहाने में। मेरा दिल तेरे बिना बेचैन हो जाता है। अकेली नहाने जाती हो। जब तक आ नहीं जाती बस डर लगा रहता है। दिल काँपता रहता है इस बूढ़े का।”

“तब पिताजी आप भला सन्ध्या क्या करते होंगे ?” दाल चूल्हे पर रखते हुए मुस्कराकर ललिता ने कहा और फिर आकर पिताजी के सामने वाले आसन पर बैठ गई।

खाना बना और दोनों ने खा भी लिया।

सन्ध्या, फिर रात्रि—आज नींद नहीं आई ललिता को। मन में अनेक विचार आने लगे। मैंने कितना निष्ठुर व्यवहार किया आज पंकज के साथ ? वह माफी माँग रहा था और फिर भी मैं बराबर नसीहत की झड़ी ही लगाये रही।—

मेरा क्रोध फिर भी शांत नहीं हुआ। मनुष्य से ही होती है ग़लती भी।

मैं यदि इस परिस्थिति में पड़ जाऊँ तो... नहीं, नहीं; मैं कदापि ऐसा नहीं कर सकती। मेरा मन चंचल नहीं। एक आत्म-विश्वास के साथ ललिता ने अपने को पीछे समेटते हुए कहा। उसके सीने में उभार आ गया।

मन पर विश्वास नहीं होता।—

आज निष्ठुर व्यवहार किया ललिता ने पंकज के साथ। इसका उसे हार्दिक खेद था। मन से उस बात को निकालना चाह कर भी वह निकाल नहीं पा रही थी।

सुबह फूल कितनी देर तक चुनती रही ललिता परन्तु पंकज नहीं आया। शायद नीद न खुली हो। गंगा-तट पर वह अवश्य आयेगा। उसे विश्वास था।

फूल लेकर घर आई और पूजा का सामान जुटाकर धोती हाथ में लेकर घर से बाहर होना ही चाहती थी कि पिताजी ने कहा, “कल की तरह देर न लगाना बेटी! मुझे बड़ी चिंता हो जाती है देर होने पर।”

“जल्दी ही लौटूँगी पिताजी!” कहकर ललिता दरवाजे से बाहर हो गई।

कितनी देर बाट जोही परन्तु पंकज आज गंगा नहाने भी नहीं आया।

आत्माभिमान तो सभी में होता है। प्यार में भी मान-हानि का ध्यान रखने वाला पंकज आज नहीं आया।

ललिता को यों ही घर लौटना पड़ा। परन्तु फिर भी वह घर जाते हुए यह सोच रही थी कि पंकज अवश्य घर पर गया होगा।

“कोई आया तो नहीं था पिताजी!” घर पहुँचकर ललिता ने पिताजी से पूछा।

“कोई नहीं बेटी।” सरल स्वभाव से पिताजी ने उत्तर दिया।

ललिता मुँह लटकाये ही रह गई। उसका दिल बैठ गया मानो उसके शरीर से प्राण निकल गये हों, तमाम रास्ता भर उसने आशा की थी कि पंकज यदि सरिता-किनारे नहीं तो घर पर अवश्य गया होगा परन्तु वह वहाँ भी नहीं गया।

: २ :

पंकज लोकनगर का जमींदार है। अपने घर का स्वामी है। माता-पिता थोड़ी ही अवस्था में छोड़कर मर गये। बचपन से स्वतंत्र है अपनी इच्छा का मस्त प्राणी।

दो साल की अवस्था में ही उसकी शादी हो चुकी थी। उसकी स्त्री सुन्दर थी, पढ़ी-लिखी थी। बहुत बड़े खान्दान की थी, पंकज से भी बड़े जमींदार की लड़की।

पंकज के पिता में न जाने कितनी लूटें थीं। तमाम ज़मीन अपनी जिन्दगी में ही गिरवी रख चुके थे। यहाँ तक कि पुत्र-वधू की चीजें तक अपनी नहीं थीं, परन्तु जो उसकी अपने मैके की चीजें थीं उन पर कोई अधिकार नहीं जमा पाया था।

कर्जा होते हुए भी बाग़-जमीन सभी पर अभी अधिकार पंकज का ही था। यदि कोई ऐसी चीज़ दुनिया में थी कि जिस पर वह अधिकार नहीं पा सका था तो वह उसकी स्त्री थी। वह स्वतंत्र थी—पूर्ण स्वतंत्र। उस पर पंकज का कोई अधिकार नहीं था।

उसकी स्त्री सब परिस्थितियों को जानती थी। वह जानती थी कि पति देवता की ज़मींदारी और शान दो दिन की मेहमान है और फिर उन्हें उसके ही आश्रित होकर रहना होगा। उसे अपने बाप की धन-सम्पत्ति पर नाज़ था और उसी के दबदबे का अंकुश वह पंकज की गर्दन पर रखना चाहती थी।

वह भी अपने माता-पिता की इकलौती सन्तान थी। एक धनाढ्य की कन्या। फिर भला पंकज की वह क्या चिन्ता करती ?

खाना बनाना तो दूर की बात, कभी बिना बोले एक शब्द भी मुँह से निकालना उसके लिये पाप था। दो-चार बार पंकज के बोलने पर यदि उसने एक शब्द कह दिया तो समझो भाग्य जाग उठे। पंकज को उसके शब्दों का मूल्य आँकना पंकज की शक्ति से परे की बात थी।

आज पंकज का चित्त ठीक नहीं है।

“इस प्रकार मुँह लटकाये कब तक बैठे रहोगे ? कोई घर में मर तो गया नहीं है जो इस तरह मे बैठे हो।” पंकज की स्त्री ने कर्कश स्वर में पलंग के पास खड़े होकर कहा।

“मेरे लिये तो सब मरे ही बराबर हैं।” पंकज ने स्वाभाविक सरलता से उत्तर दिया और अपना मुँह दूसरी ओर को फेर लिया।

इतना सुनकर पद्मा आग-बबूला हो गई। उसकी आँखें लाल हो गईं। उसकी जान के लिए ऐसे अपशब्दों का प्रयोग होगा यह उसने स्वप्न में भी न सोचा था।

“मुझे क्यों मरना पड़ा है भला ? कोई तुम्हारे ऊपर रहती हूँ ? ठीक से समझ रखो कि मैं तुम्हारे ऊपर जिन्दा नहीं हूँ। अगर तुम्हारा बस चले तो एक दिन में ज़हर देकर खत्म कर दो।” पद्मा झट्लाकर बोली।

“कोई किसी के ऊपर नहीं जीता पद्मा ! तुम्हीं फिर भला मेरे ऊपर क्यों होगी ? फिर मेरे पास है ही क्या जो तुम्हें अपने ऊपर...” कहते-कहते पंकज की ज़वान रुक गई। उसने और कुछ कहना मुनासिब न समझा।

“इसमें शक भी क्या है ? चार दिन बाद मेरे ही सामने झुकना होगा। सारी ज़मींदारी तो पिताजी...” कहती-कहती पद्मा भी रुक गई। उसने भी बात को आगे न बढ़ाना चाहा परन्तु बात जवान पर प्रा चुकी थी।

“बस पद्मा । अगर पिताजी की शान में तूने कुछ भी कहा तो ...” पंकज का मुँह लाल हो गया । उसकी सारी देह काँपने लगी । उसका सिर चकरा गया और अचेत-सा होकर पीछे को लुढ़क गया ।

“कहूँगी क्यों नहीं ? उन्हींने तो हमें दिवालिया बनाकर छोड़ दिया है । आप मजे से मर गये और हमारे ऊपर...” पद्मा आगे कुछ न कह सकी । वह कहना तो बहुत कुछ चाहती थी परन्तु पंकज की दशा देखकर—

“तू धन की भूखी है पद्मा ।” पंकज कह उठा ।

“बिना धन क्या काम चलता है ? कौन पूछता है निर्धन लोगों को ? लोग यह जानते हैं कि अभी आपके पास घाटा नहीं है । यदि यहाँ कुछ नहीं है तो ससुराल में कमी नहीं है । इसीलिए बातें भी करते हैं । इसीलिए तो कर्जे वाले भी सिर नहीं उठाते, नहीं तो एक दिन में नीलाम करा लें...”

“बस चुप रहो पद्मा ! क्या तुम यह चाहती हो कि मैं घर में पैर ही न रक्खा करूँ । जब कभी आता हूँ, तुम आग उगलना शुरू कर देती हो ।” पंकज ने कहा ।

“और नहीं तो क्या करूँ ? सब दोष मेरी ही तो किस्मत का है ।”

“मुझे तुम्हारे बाप की रत्ती भर की कोई चीज नहीं चाहिये ! तुम और तुम्हारे पिता अपनी दौलत को लेकर नाचा करो । मुझे कोई आवश्यकता नहीं है उसकी । समझीं ! बस चली जाओ मेरे सामने से ।”

“कहने और करने में बहुत फ़रक होता है ” मुँह मटकाकर पद्मा ने कहा ।

“यहाँ यह बात नहीं है पद्मा !”

“अच्छी बात है, बतला दूँगी एक दिन ” कहकर ज़रा ठसके साथ

पद्मा पंकज को यों ही छोड़कर चली गई । फिर उधर नहीं आई ।

आज पंकज ने खाना नहीं खाया ।

कितनी देर तक विचार करता रहा कि क्या वास्तव में उसी ने अन्याय किया ?

माफी माँगने से अधिक भला वह और कर भी क्या सकता था ? इतने पर भी वह खुश नहीं हुई । गलती हो ही जाती है आदमी से । आगे को नहीं होगी । बस इतनी ही तो बात थी ।

आज बाग में उसने अवश्य ही मेरी प्रतीक्षा की होगी । मुझे न पाकर कितनी निराश हुई होगी वह । यह मैंने बुरा किया जो मैं नहीं गया ।

गंगा तट पर भी आज मैं नहाने नहीं गया ।

रात्रि को कोई नींद नहीं आई । प्रातःकाल की प्रतीक्षा कर रही थीं आँखें । आज पंकज और दिन से पूर्व ही बाग में पहुँच गया ।

धूप निकल आई परन्तु ललिता फूल लेने नहीं आई । आँखें इधर-झाँक-झाँककर देख रही थीं । कहीं किसी ओर से छुप कर तो नहीं निकल गई । परन्तु दीवार तो वह कूद नहीं सकती और कोई दूसरा मार्ग भी नहीं बाहर जाने का ।

नहीं वह आज फूल लेने आई ही नहीं, पंकज के मन ने कहा ।

गंगा नहाने का समय हो गया है ।

कितनी देर वहाँ भी प्रतीक्षा की परन्तु आज ललिता वहाँ भी नहीं आई ।

नाराज हो गई शायद । पंकज ने इससे यही अंदाज लगाया । उसने अपने पिछले दिन की भूल और भावुकता पर पश्चात्ताप किया ।

पंकज से अब नहीं रहा गया । वह सीधा ललिता के मकान पर चला गया । बाहर से ही आवाज दी, “ललिता...ललिता ।”

“कौन बेटा पंकज !” रामनाथ ने बाहर आकर कहा । “आज तो बेटा बहुत देर हो गई और वह अभी तक नहीं आई । मेरी तबियत

ठीक नहीं है बड़ी चिन्ता हो रही है। अब तक तो वह गंगा नहा कर भी आ जाया करती थी।”

“तो क्या फूल लेने गई थी?”

“हाँ बेटा!”

“कितनी देर हुई?”

“बहुत सुबह गई थी बेटा!”

“अच्छा, मैं अभी खोज करता हूँ पंडितजी! आप चिन्ता न करें। आज पता नहीं कहाँ फूल लेने चली गई है।” कहकर पंकज निकला ही था कि एक टोकरी में फूल लिये ललिता आती दिखलाई दी।

गर्मी के मारे पसीना चू रहा था और नंगे ही पैरों तेजी के साथ चली आ रही थी। सिर पर फूलों की छत्रड़ी रखी थी। उसकी यह छवि पंकज ने देखी तो मीठी टीस के साथ यह मूर्ति उसके हृदय में उतर गई।

पंकज को घर के द्वार पर देख कर ललिता ठिठक गई। फिर अपनी की गई जल्दबाजी पर थोड़ी-सी शरमिन्दगी भी आई।

“कहाँ चली गई थी ललिता?” पंकज ने पूछा।

“फूल लेने।” ललिता ने उत्तर दिया।

“आगई बेटा! बड़ी देर की आज तूने।” रामनाथ ने ललिता की आवाज़ सुनकर कहा। “कहाँ चली गई थी आज फूल लेने? पंकज बाबू तेरी तलाश कर रहे थे।”

“देर हो गई पिताजी! आज ज़रा दूर गई थी। गंगा के पार वाले बाग में चली गई थी। इधर से गंगा को पार करके चली गई पिताजी परन्तु ज्योंही लौटने लगी तो क्या देखा कि गंगा में पानी आ गया। इसीलिए पुल से होकर लौटना पड़ा। बड़ा चक्कर लग गया लौटने में।”

“तभी इतनी देर हो गई। इतनी दूर फूल लेने मत जाया करो

बेटी ।” रामनाथ ने कहा । “बेचारे पंकज बाबू कितने दयालू हैं कि पूजा के लिये तुम्हें रोज फूल दे देते हैं ।”

ललिता चुप रह गई ।

“अच्छा ला जल्दी । आज पूजा को देर होगई ।”

ललिता ने फूल दे दिये और और रामनाथ पूजा पर जा बैठा ।

इधर पंकज कुछ देर ठहरकर धीरे से घर से निकल गया ।

फूल देकर ललिता ने देखा । हृदय यों ही तड़प उठा । शीघ्रता से घर से बाहर निकली । पंकज काफी दूर निकल चुका था । शक्ति न होते हुए भी ललिता दौड़ी, “जरा सुनिये तो । सुनियेगा जरा ! आप चले ही जा रहे हैं ?” जरा सुनिये तो ।”

“मुझ से कह रही हो कुछ ?” पंकज ने रुककर पूछा और उसका हृदय अन्दर ही अन्दर मुस्करा उठा -

“जी !”

“कहिये !” ठहरकर पंकज खड़ा हो गया ।

“इतनी जल्दी क्या थी जाने की आपको ? कहीं मित्र-मंडली में जाना हो तो मैं आपको नहीं रोकना चाहती ।” तीखे मधुर व्यंग के साथ ललिता ने कहा ।

“नहीं, मैंने सोचा कि शायद ललिता को अभी स्नान करने जाना है और वह पिछली चीजों को भूलने का प्रयत्न कर रही है । वह अब किसी नई गंगा में ही नहाने जायेगी । इसलिये क्यों व्यर्थ किसी को देर किया जाय ?” सादगी से कहकर पंकज ने आँखें आसमान पर टाँग दीं ।

“जी ! फूल तो मैं यों ही दूसरे बाग में लेने चली गई थी । सोचा कि चलो जैसा यह बाग वैसा वह बाग । यहाँ भी कोई... नहीं वहाँ भी कोई नहीं । आपकी तबियत तो ठीक है आज ।” बात बदलकर ललिता बोली ।

“क्यों ललिता ! यह मेरा बाग है ।” पंकज पहली ही बात पर स्थिर रहा । उसने तबियत वाली बात पर ध्यान ही नहीं दिया ।

“जी ! लेकिन आपने तो उसमें आना छोड़ दिया है । आप तो शायद...”

“देर तो हो ही जाती है ललिता ! कोई नई बात तो थी नहीं ।” उदास से मन से पंकज ने कहा ।

“आपके विचार से !” एक लम्बा साँस खींचकर “खैर ऐसा ही होगा ।” ललिता ने कहा ।

“क्यों क्या गलत कह रहा हूँ ललिता ?” पंकज ने उत्सुकता से पूछा ।

“पहिले जब कभी बाग में आने में देर हो जाती थी तो गंगा पर पहुँचने में उतनी ही शीघ्रता हो जाती थी । यह शायद आप भूल गये पंकज बाबू ।”

“अच्छा रहने दो ललिता इन बातों को । अब मैं तुमसे यह पूछता हूँ कि तुम आखिर कब तक मुझे इस तरह से परेशान करती रहोगी !” पंकज ने सीधा प्रश्न करके इधर-उधर की बातों का मानो पतंग ही काट दिया ।

“जी यदि यही बात मैं आपसे कहूँ तो भला आप क्या उत्तर देंगे ।” ललिता इस समय मुस्करा रही थी । पंकज ने उसके मधुर हाथ में जीवन के उस आनन्द का अनुभव किया जिसकी केवल कल्पना मात्र ही वह कर पाया था ।

दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े । बाग सामने था ।

“चलो बाग में चलें ।”

“नहीं, अब पिताजी पूजा कर चुके होंगे ।”

“अच्छा लेकिन यह लेती जाओ । मुझे बहुत देर लगी थी इस काम में । और बड़े प्यार से मैंने एक-एक करके चुना था ।”

“क्या फूल आपने पहिले ही...”

“और नहीं तो क्या ?”

“फूल और यह माला भी ! खूब ! माला भी आप बना लाये । यह तो मेरा काम था लेकिन ..”

“काम तो मैंने नहीं किया । लो माला लेकर काम तुम्हीं करदो ।” मुस्कराते हुए पंकज ने कहा ।

“लेकिन यह हँसी नहीं पंकज !” गम्भीर होकर ललिता बोली । ललिता साँस खींचकर रह गई । उसका दिल धड़क रहा था ।

“मेरी शादी हो चुकी है ललिता यही तो तुम कहना चाहती हो । यही भय है न ! समाज मुझसे कुछ नहीं कह सकता ।” पंकज ने अटपटे शब्दों को किसी प्रकार वाक्य में गूँथ कर कहा ।

“क्यों ?” उत्सुकता से ललिता ने पूछा ।

“वह शादी मेरी इच्छा से नहीं हुई ।” दृढ़ता के साथ पंकज ने कहा ।

“फिर भी क्या हुआ ? शादी तो हुई । और शादी हमारे हिन्दू धर्म में एक बार ही होती है ।”

“और भी बात है ललिता ! तुम मुझे छोड़ सकती हो यदि बर्बाद करना चाहो ।” पंकज ने ये शब्द बड़े ही सँजो कर कहे । उनका आशय भी शायद उससे अधिक कोई अन्य नहीं समझता था ।

“ऐसा मत कहो पंकज ! परन्तु एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकतीं यह कैसे सम्भव है भला ?”

“सच समझ लो ललिता ! इस हृदय में कभी दो ने स्थान नहीं पाया !

यह हमेशा से तुम्हारा ही रहा है और तुम्हारा ही रहेगा । तुम मुझे डूँकरी दोगी तो सच जानो यह जीवन की नौका बिना पतवार के तूफानों की गोद में जा गिरेगी ।”

“आज क्या कह रहे हैं आप ?” कुछ व्यग्र भाव से ललिता ने पूछा ।

“यह सत्य है ललिता ! यदि संसार में मैं किसी को अपना कह सकता हूँ तो वह एक बस एक ही व्यक्ति है ?”

“कौन ?” बड़ी उत्तुकता से ललिता की आँखें अर्धमीलित हो गईं ।

“ललिता ।”

“सच” ।

“सच !” पंकज ने गम्भीरतापूर्वक कहा ।

ललिता का तमाम बदन रोमांचित हो उठा । उसके मुख पर पसीना आगया । स्वेदपूर्ण शरीर में हल्की-हल्की थिरकन थी, कम्पन थी । उसके नेत्र आपसे आप बन्द हो गये मानो उसने उनकी पुतलियों में किसी की आत्मा को समेट लिया हो ।

बन्द नेत्रों से ही ललिता ने पंकज के दोनों हाथ अपने हाथों में ले लिये और पंकज ने भी ललिता के शरीर को सहारा देकर अपने में समेट सा लिया । ललिता ने धीरे से कहा—

“और पद्मा !”

“उसे मेरी आवश्यकता नहीं । मैं निर्धन हूँ ! गरीब हूँ । मेरे पास कुछ नहीं । मेरा सब कुछ समाप्त हो चुका है । जो दीख रहा है वह भ्रम है, धोखा है ।” एक साँस में कह गया ।

“केवल इसलिये ?” और किसी बात को सोचे बिना ही ललिता ने कहा ।

“हाँ, उसके विचार से धन सम्पत्ति बड़ी चीजें हैं । और उनके बिना मनुष्य का कोई मूल्य नहीं ।”

“क्या कह रहे हैं आप ? क्या इतना छोटा विचार है पद्मा का ?”

“हाँ ललिता ! इसमें विचारने के लिये न कभी स्थान रहा है और न कभी रहेगा ही । तुम उस स्त्री को नहीं समझतीं । वह एक धनाढ्य की लड़की है, जिसने आज तक जीवन को पैसे पर ही तोलना सीखा है ।”

“मैं पद्मा के साथ कोई अन्याय नहीं कर सकती पंकज !” व्याकुल होकर ललिता ने कहा और उसके नेत्रों में आँसू आगये ।

“फिर मेरे साथ करना चाहती हो ? मैं समझता हूँ विधाता ने अन्याय सहन करने के लिए मेरा ही कलेजा बनाया है ।”

“ऐसा मत कहो पंकज ! ऐसा मत कहो ।”

“एक के साथ तो अन्याय होगा ही और जिसे तुम उसके प्रति अन्याय कह रही हो वह अन्याय नहीं है । वह स्वतंत्र होकर अधिक प्रसन्न रह सकेगी ललिता !” पंकज ने सरलता से कहा ।

“परन्तु विश्वास किस प्रकार कर पाऊँ पंकज ! यदि मेरे हृदय की...।”

“क्या मेरा ।...”

“मत कहो यह बात !”

“मैं तुम्हें पाकर दुनिया को ठुकरा सकता हूँ ललिता ! मुझे दुनियाँ से मोह नहीं ! मुझे किसी का मोह नहीं, केवल मोह है तो एक तुम्हारा ।

तुमसे न जाने क्यों इतना मोह हो गया है ! मैं लोभी हो गया हूँ ललिता !

इस दोष का दंड यदि देना चाहती हो —”

“परन्तु यदि पिताजी ने—”

“उन्हें मैं राजी कर लूँगा ललिता !”

आज बातें यहीं समाप्त हो गईं ।

रामनाथ पूजा कर चुके थे ।

ललिता खुशी मन घर लौटी ।

पंकज भी आज बहुत खुश था । वह अपने मन के कुलावे मिलाता हुआ जा रहा था । उसका मन भरपूर नाच रहा था । ललिता की भोली आकृति उसके नेत्रों में स्थिर होकर बस गई थी । वह उसे सँभाल कर आगे बढ़ रहा था ।

: ३ :

“मैं एक दिन भी अब यहाँ नहीं रहना चाहती । एक दिन भी नहीं ठहर सकती । मेरे भेजने का फौरन ही कोई इन्तजाम होजाना चाहिये ।” कड़क कर पद्मा ने कहा । उसका क्रोध उबाल खा रहा था । उसके नेत्रों से क्रोध की ज्वाला निकल रही थी ।

“मैंने मना भी तो नहीं किया जाने को ।” स्थिरता के साथ पंकज ने कहा ।

“तुम क्यों मना करने लगे हो ?—नहीं-नहीं यहाँ रहना बिलकुल मुश्किल है । मैं यहाँ नहीं रहूँगी । एक मिनट के लिए भी नहीं रहूँगी ।” इतना कहकर पद्मा तेजी के साथ दालान में इधर से उधर को घूम गई ।

साज ही पद्मा के लिये उसके मैके से अच्छी-अच्छी चीजें आई थीं । इपीलिये फूली-फूली फिर रही थी । आज वह आपे में नहीं थी । वह भला पंकज को क्या समझती । उसकी नजरों में पंकज कोई चीज़ नहीं था । वह अपने मयके का पहिनती थी अपने मयके का खाती थी । किसी का कोई अहसान नहीं था उस पर । वह तो समुराल वालों का रत्तीभर भी अहसान अपने सिर पर लेने को तय्यार नहीं थी । वास्तव में वह उन्हें समझती ही क्या थी । उसने अपने पीहर का रौब-दौब और दबदबा देखा था । उसके सामने तो यह सब मज़ाक मालूम देता था । कभी-कभी तो उसे हँसी आ जाती थी यहाँ की दशा देखकर और तभी वह अपने माथे को ठोंककर भाग्य को दोषी ठहराती थी कि जिसने उसे यहाँ इन कंगालों के बीच ला पटका ।

पद्मा की शादी बहुत बचपन में हुई थी । शादी के बाद पद्मा हमेशा शहर में ही रही थी । इधर पंकज की तालीम मिंडिल से ऊपर नहीं जा सकी । पंकज के पिता ने कभी इस ओर ध्यान ही नहीं दिया । वास्तव में पद्मा को पंकज कभी अच्छा नहीं लगा । फिर वह

विदेशी शिक्षा का भी सत्कार कर चुकी थी। भाग्य में बदे पति को निभाने वाली हिन्दू स्त्री की बात उसे अपनी ओर नहीं खींच पाती थी। पंकज को वह कभी अपने साथी के रूप में ग्रहण कर सकेगी इसमें उसे पूरा-पूरा संदेह था। न वह पार्टी के योग्य था, न सभा सोसायटी के और नहीं पद्मा का मान कभी उसके साथ में रह कर बढ़ ही सकता था। यह बेमेल बन्धन उसे कतई पसन्द नहीं था।

प्रयत्न करने की उसने कोई आवश्यकता नहीं समझी। सम्भव था कि पंकज से कभी सहचर्य के कारण उसका मेल हो जाता परन्तु पतंगों की डोरी दोनों ओर से बराबर खिंचती ही रही। धन और सम्पत्ति का अभिमान इन दोनों के बीच में इस तरह आकर खड़ा हो गया था कि दोनों का जीवन एक होना असम्भव हो गया।

फिर भी पंकज एक शानदार ज़मींदार था और उसके जीते-जी किसी कर्जदार की सामर्थ्य नहीं थी कि उसके सामने चूँ कर पाता। जायदाद, बाग-बगीचे सब रहन थे, परन्तु थे सब उसी के पास।

पद्मा कलकत्ता जाना चाहती थी। अपने पिता के यहाँ रहने में उसे जो मज़ा आता था वह यहाँ नहीं मिल सकता था।

एक दिन नहीं रहा गया। आखिर कहाँ तक सुनता पंकज भी। भेजने को राज़ी हो गया। उसने उसके जाने में कोई रुकावट पैदा नहीं की।

छोटे स्टेशन पर पद्मा को गाड़ी में बिठलाकर लौट ही रहा था कि रास्ते में ललिता मिल गई। “ललिता ! कहाँ जा रही हो इतनी तेजी के साथ ?”

“एक बात करना चाहती थी अरे ! अब तो गाड़ी ही निकल गई। आप तो—”

“हाँ-हाँ पहुँचाकर ही आ रहा हूँ पद्मा को। वह कलकत्ते में पली है ललिता ! भला फिर तुम ही कहो कि इस लोकनगर में उसकी तबियत किस प्रकार लग सकती थी ? यह देहात ठहरा। यहाँ न तो वह

शहर की चहल-पहल ही है और न वह तफरी के सामान । न सिनेमा न थियेटर ।”

“फिर भी उनका घर तो यही है ।” सरलता से ललिता ने कहा ।

“वह ऐसा नहीं समझती ललिता ! ऐसा तो उसने कभी भी नहीं समझा ।” पंकज बोला ।

“यही तो मैं पूछना चाहती थी...।”

“पूछने की आवश्यकता नहीं ललिता ! मैं तुम्हें विश्वास करा दूँगा आज कि मैं निर्दोष हूँ । मेरा कोई दोष नहीं ।” दीन भावसे पंकज बोला । ललिता एक टक पंकज के मुख पर देख रही थी ।

“दो वर्ष का था जब शादी हुई ।”

“यह मैं जानती हूँ । परन्तु फिर भी वह आपकी स्त्री है ।”

“वह ऐसा कभी नहीं समझ पाई ललिता ! यही तो तुम्हारा भ्रम है । पति-पत्नी के जिस सम्बन्ध की तुम कल्पना कर रही हो वह उसे छू तक नहीं गई ।”

“क्या कह रहे हैं आप ?” अन्यमनस्क भाव से ललिता ने कहा ।

“आज तुम्हें विश्वास हो जायेगा ललिता ! मैं विश्वास कराके छोड़ूँगा ।”

दोनों पंकज के मकान पर पहुँच गये । तमाम मकान खाली था ।

स्वतन्त्रता से दोनों अन्दर गये । कुछ देर के लिये ललिता यहाँ की रानी थी । पंकज से दिल की रानी आज महल में भी स्वतन्त्रता से आ सकी ।

पंकज ने एक अलमारी खोली और पत्रों का एक बंडल उठा लाया ।

“ललिता यह मेरे पहिले पत्र का उत्तर है ।” एक पत्र ललिता के सामने खोलते हुए पंकज ने कहा ।

“स्त्रियाँ पतियों की दासी नहीं होतीं । मैं कलकत्ते से नहीं आ सकती । उस गाँव में तो मेरा एक दिन भी मन लगना कठिन है ।

फिर मैं तुमको भी यहाँ पर लाकर अपने पास नहीं रख सकती ।

इतनी उम्र में यदि तुम चाहो कि कुछ पढ़ सको, तो असम्भव है। यहाँ मेरे मित्रों के बीच तुम ही समझ लो कि तुम्हारी क्या दशा होगी ?

तुम गाँव में ही अच्छे हो।

यदि किसी गाँव की ही लड़की से तुम्हारी शादी हुई होती तो कितना अच्छा होता ?

मेरी शादी में कोई विश्वास नहीं है। मैं इसे व्यर्थ का ढकोसला समझती हूँ। माँ-बाप की ना समझी मेरे पैरों की बेड़ियाँ नहीं बन सकती।

फिर मेरा खर्च भी वहाँ पर नहीं चल सकेगा। मुझे पिताजी से मदद लेनी ही होगी। इससे क्या फायदा है भला वहाँ आने में, बेकार मनिआर्डर के पैसे भी देने होंगे। यहीं पर रहना क्या बुरा है ?

तुम कुशलपूर्वक रहो।

आशा है तुम मेरी स्वतन्त्रता में कभी बाधक बनने का प्रयत्न न करोगे।" तमाम पत्र ललिता एक बार में न पढ़ सकी। लेकिन दंग रह गई वह पत्र देखकर। पत्र का एक-एक शब्द उसके बदन में कँपकपी लाने वाला था।

क्या स्त्री है यह भी ? अजीब तमाशा है। ललिता वास्तव में कुछ भी न समझ सकी। उसका दिमाग चकरा गया। उसके पिताजी ने सीता का चरित्र उसे सुनाया था। हिन्दू धर्म की नारी का रूप जो उसने सोचा था उसकी तो यहाँ कहीं काली छाया मात्र भी नहीं थी।

"फिर तुम आखिर कहने क्या जा रही थीं स्टेशन पर ललिता ? क्या मैं भी जान सकूँगा तुम्हारे भाव ?" उत्सुकता से पंकज ने पूछा।

"मैं क्षमा माँगने जा रही थी पंकज ! मेरा ख्याल था कि पद्मा मेरे और तुम्हारे सम्बन्धों के ही कारण कलकत्ता जा रही है।"

"किस बात की क्षमा ?" पंकज ने आश्चर्य से कहा।

"यही कि मैं पद्मा की चोरी नहीं करना चाहती। मैं उसके धन को नहीं चुराऊँगी।" दीन भाव से ललिता ने कहा। "मैं सचमुच

पंकज अपना सर्वस्व खोकर भी किसी का कुछ अधिकार नहीं लेना चाहती ।”

“ललिता ! क्या अब भी तुम्हारा यही विचार है ? यह धन पद्मा का भला हुआ ही कब था ! इसे तो उसने हमेशा मिट्टी ही माना है और ठुकराया है ।

उसने तो कभी नहीं अपनाया इस—।”

“और आपने ?”

“मेरी तो कभी सामर्थ्य ही नहीं हो सकी कि मैं यह विचार भी मन में ला सकूँ । तुम ही सोचो ललिता ! यदि एक दस दिन के भूखे गरीब को एक दम कहीं से कुवेर का खजाना कोई दे और कहे कि यह तेरा है तो क्या उसे विश्वास होगा ? बोलो ललिता ! मेरी ठीक वही दशा है ।”

“विश्वास न सही पंकज परन्तु देने पर वह उसका हो तो जायेगा ।”

“भूल कर रही हो ललिता ! दिया हुआ धन मैं नहीं सँभाल सकता । मुझमें शक्ति नहीं है इतनी । यह लक्ष्मी चलायमान है । मैं निर्बल हूँ, निर्धन हूँ ललिता ! तुम कुछ भी विचार नहीं करतीं । वह मेरी नहीं हो सकती । यह स्वप्न है और तुम्हें भी दया नहीं आती मेरी दशा पर । स्वप्न सत्य नहीं हो सकता ? बुलबुलों के पीने से प्यास नहीं बुझ सकती ।”

“अब वह कलकत्ते किसलिये गई है ?” ललिता ने पूछा ।

“यह भी क्या करोगी पूछकर ललिता ? मेरा दिल पत्थर हो गया है । कुछ भी मैं कह सकता हूँ । हाँ लो वह पत्र ही तुम्हें दिखलाये देता हूँ, जिसे पाकर वह गई है ।” यह कहते हुए एक पत्र उठाकर पंकज ने ललिता के हाथ में दे दिया । बहुत सुन्दर लिफाफे में रंग-विरंगे कागज पर लिखा हुआ था । साथ ही खुशबू भी आ रही थी उस पत्र में से ।

“मेरे हृदय की रानी पद्मा !

तुमको गये हुए इतने दिन हो गये । तुम्हारी याद मुझे कितनी सताती है, यह कह नहीं सकता । लिखने की यह बातें नहीं होतीं । कलम रुक रहा है पद्मे !

तुमसे मिलने को दिल बेचैन है । रोज़ाना दिन में कई बार आँखें डब-डबा आती हैं तुम्हारी याद में । तुम्हारी प्यारी मनोहर मूर्ति क्या कभी एक क्षण के लिए भी इन नेत्रों से हटकर कहीं जाती है ?

रात को तुम्हारा ही स्वप्न देखता हूँ प्यारी ! इसी स्वप्न को देखते-देखते प्रातःकाल हो जाता है । बस आती है और चली जाती है । क्या कभी पता था कि तुम इतनी निष्ठुर हो जाओगी ।

मैं पागल हो जाऊँगा प्यारी ! तुम्हें आना ही होगा । शीघ्र आओ ।

सदैव तुम्हारा
विनोद ।”

“क्या यह पत्र पद्मा ने तुम्हें स्वयं दिखला दिया था ?” ललिता ने पंकज से पूछा ।

“हाँ ।” पंकज ने उत्तर दिया । “यह पद्मा के हृदय की विशालता भी है ललिता । यहाँ मैं झुक जाता हूँ उसके सामने ।”

“अपने आप !” आश्चर्य से ललिता ने फिर कहा ।

“हाँ ललिता अपने आप । वह स्वतन्त्र होना चाहती है । वह कहती है कि उसका विवाह मेरे साथ हुआ अवश्य है परन्तु इसका मतलब यह नहीं कि वह मुझे प्रेम भी करे । मैं उसके साथ जबरदस्ती नहीं कर सकता । वह चली गई । और इस बार मैंने रोकने का भी प्रयत्न नहीं किया, क्योंकि वह व्यर्थ था, निराधार था, उसका कोई फल न निकलता ।”

“तब क्या वह जबरदस्ती चली गई ?”

“यह भी कोई पृच्छने की बात है ललिता ?” जबरदस्ती की इसमें कोई बात ही नहीं। उसे जाना था और मैं उसे रोक नहीं सकता था। रोकता भी क्यों ? मैं ही आखिर उसकी स्वतन्त्रता में बाधक क्यों बनूँ ? जब मैं स्वयं बंधन-मुक्त होना चाहता हूँ तो उस पर ही भला प्रतिबन्ध क्यों लगाऊँ ? बंधन मेरे विचारों के प्रतिकूल है।”

ललिता वहाँ से सीधी अपने घर चली गई।

अधिक देर आज बातें नहीं कीं। रात्रि में फिर ललिता ने विचार किया कि कहीं वह कोई पाप तो नहीं कर रही है। उसका पंकज से प्रेम करना धर्म-विरुद्ध कार्य तो नहीं है।

किसी के प्यार को ठुकराना पाप है। फिर जब पद्मा विवाहित होकर भी अन्य पुरुष को प्यार कर सकती है तो क्या वह पंकज को प्यार नहीं कर सकती ? वह पंकज को अवश्य प्यार कर सकती है। उसके मार्ग में कहीं धर्म नहीं आता।

पंकज उसे प्यार करता है। आज से नहीं उसी दिन से प्यार करता है जिस दिन से उसने होश सँभाला है। उसका प्यार ठुकराने योग्य नहीं। यह सहचर्य का प्रेम है, सौंदर्याकर्षण या बन्धन का प्रेम नहीं। इस प्रेम की ताजगी और वास्तविकता है।

परन्तु मैं एक निर्धन ब्राह्मण की कन्या और वह गाँव का सबसे बड़ा ज़मींदार। यह अनमेल प्रेम कैसा ? क्या संसार इसे प्रलोभन और लोभ का नाम नहीं देगा ?

परन्तु कभी-कभी अपने को पंकज निर्धन क्यों कहा करता है ? क्या वास्तव में पंकज पर इतना कर्ज़ा हो रहा है कि तमाम ज़मींदारी...। ललिता ने फिर कुछ देर इस दिशा में भी सोचा क्योंकि इसका जीवन की वास्तविकता से सम्बन्ध रहता है लेकिन फिर कहा ‘परन्तु मुझे इन बातों से क्या प्रयोजन ? मुझे प्रेम के प्रति प्रेम करना ही चाहिये। प्रेम का आदान-प्रदान प्रेम से होता है, धन-दौलत या जायदाद से नहीं।’

फिर पिताजी की समस्या उसके सामने आ खड़ी हुई ।

प्रातःकाल फूलों की डलिया लेकर ललिता बाग में फूल चुनने के लिये गई । पंकज वहाँ पहिले से ही प्रतीक्षा कर रहा था । उसने ललिता के मार्ग में अपनी पावन दृष्टि फँसाई हुई थी । प्रतीक्षाकुल उसका शरीर बार-बार रोमांचित हो उठता था ।

“अब तुम भी देर में उठने लगी हो ?”

“मैं तो अपने समय पर ही आई हूँ । यों कहिये कि रात आपको पद्मा की याद में नींद ही नहीं आई ।” मुस्कराकर मीठे व्यंग की चुटकी लेते हुए ललिता ने कहा ।

“यह ता ठीक है ललिता कि नींद नहीं आई, परन्तु पद्मा की या किसी और की याद में इस बात का निर्णय मैं नहीं करना चाहता । यह निर्णय तो तुम ही ठीक से कर सकती हो ।”

दोनों मुस्करा दिये । आज की मुस्कराहट और दिन से भिन्न थी । आज की बातें भी और दिन से भिन्न थीं । आज हर चीज़ भिन्न थी दोनों की । मीठे मिलन का आभास था और एक खिचाव था दो हृदयों का । आज दोनों एक दूसरे के पहले की अपेक्षा अधिक निकट थे ।

“आज मैंने गुलाब-ही गुलाब के फूल तोड़े हैं तुम्हारे लिये ललिता ! देखे तुमने कितने सुहावने और सुन्दर हैं । हर रंग के गुलाब हैं इनमें ।”

मुस्कराकर ललिता बोली, “अरे ! आपने तो सारे बाग के गुलाब बिना फूल के कर दिये । यह भला क्या किया आपने ? कहीं ऐसे भी भला फूल तोड़े जाते हैं ?”

“फूले-फूले ही तो तोड़े हैं ललिता ! कलियों को कल के लिये छोड़ दिया है ।” प्रसन्नता में भर कर पंकज ने कहा और उसने अपने कुर्ते की भोर में भरे हुए प्यारे-प्यारे गुलाब लाकर ललिता की डलिया में उलट दिये । ललिता की डलिया फूलों से भर गई । उसके किनारों तक फूल छितरा गये ।

“अच्छा तो तुमने मेरे आने से पहिले ही क्यों तोड़ लिये आज ये सब फूल ?” ललिता ने फूलों की डलिया सिर पर रख कर मटकते हुए पूछा ।

“क्यों ?” सकपका कर पंकज ने कहा ।

“हम साथ-साथ तोड़ते ।” आँख फिराकर ललिता ज़रा प्यार के साथ लचकती हुई बोली । आज उसकी हर बात में एक बाँकी अदा थी । पंकज का मन मस्ती में भ्रम उठा ललिता के मुग्ध यौवन को देख कर । आज प्रथम बार उसने इस ज़वानी को पूरी तरह अपनी समझा ।

“साथ-ही-साथ तो तोड़े थे ललिता ! तुम हमेशा मेरे साथ ही तो रहती हो । तुम्हें क्या पता कि पंकज का जीवन कितने दिन से तुम्हारे साथ-साथ चल रहा है । तुम्हारा बल पाकर ही तो मैं पद्मा की अपने सीने पर मारी गई लात के आघात को सह सका हूँ ।”

“रहने दो बस इस कविता को । आप मुझे बना रहे हैं ।”

“जी ! मैं आपको बना रहा हूँ । गोया कि आप पहिले से बनी हुई हैं ही नहीं । बनाना काम भगवान् का है । हम बेचारे भला क्या बना सकते हैं किसी को ?”

दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े पंकज की इस बात पर और फिर बाग में तालाब की आखिरी सीढ़ी पर जाकर पानी में पैर डालकर बैठ गये । बातें करने लगे आपस में ।

“अच्छा ललिता...”

“जी...”

“देखो हँसी की बात नहीं हैं । ज़रा अपना वह गाना तो सुना दो ।”

“कौनसा ?”

“वही जो उस दिन गंगा-तट पर गाया था । वह दो हृदय वाला ।”

“वह गंगा-तट का गाना है और आप सुनना चाहते हैं यहाँ ?”

इठलाते हुए ललिता ने कहा । उसके मुख-मंडल पर हास्य की स्निग्ध आभा ठिठकी हुई थी ।

“मेरी हृदय-गंगा के तट पर गाओ ललिता ! वह मुझे बहुत अच्छा लगता है । यह गंगा भी तुम्हारी उस गंगा से कम पवित्र नहीं है ।”

दोनों यहाँ से उठकर बाग के बीच झरने के पास जा बैठे । एक छोटी-सी नहर बाग के बीच में होकर जाती थी । उसी के बीचोंबीच था यह झरना । झरने के चारों ओर संगमरमर के बँच पड़े थे । एक बँच पर बैठे थे दोनों ।

ललिता ने पानी में हाथ देकर पानी को उछालते हुए गाना शुरू किया—

दो हृदय मिल जाँय री ! सखि !

दो हृदय मिल जाँय ।

प्यार के कोमल करों से

हृदय-अवगुंठन लजीले

री ! सखी खुल जाँय ।

दो हृदय मिल जाँय ।

“नहीं, पूरा गाना सुनाना होगा ।” ललिता की कमर पर धीरे से हाथ रखते हुए पंकज ने कहा । पंकज का रिक्त जीवन मानो ललिता के मधुर संगीत-स्वर से भरता जा रहा था । जीवन की कड़वाहट मिठास में बदल रही थी । ललिता गाने लगी—

अंक में लेकर तरंगें

प्यार को, कुछ गा रही हैं,

लाज से मुसका रही हैं ।

क्यों न भर कर दो हृदय

अपने उदधि में इस मिलन को

चिर-मिलन बन जाँय;

प्रेम-कलिका प्रेम-अधरों

पर स्वयं खिल जाँय ।

दो हृदय मिल जाँय ।

‘दो हृदय मिल जाँय,’ कई बार पंकज ने इस पंक्ति को गुनगुनाया ।

“क्यों ललिता ! क्यों न भला दो हृदय मिल जायें ।” फिर उत्सुकता से ललिता के नेत्रों में नेत्र डालकर पूछा ।

“ये बिछुड़े हुए ही कब थे पंकज !” सरल भाव से ललिता बोली ।

पंकज का मन खिल उठा । स्वप्न-सा उसने यह क्या देख लिया आज ? कानों पर विश्वास नहीं हुआ उसे । क्या सचमुच वे शब्द ललिता के ही थे जो उसने अभी-अभी सुने ।

“क्या सत्य कह रही हो ललिता ?” पंकज ने फिर दुहरा कर पूछा । मानो वह उसका दृढ़ निश्चय कर लेना चाहता था ।

“मैंने कभी झूठ भी बोला है क्या आपसे ?”

“यह तो मैंने नहीं...” अन्यमनस्क भाव से कुछ कहता-कहता पंकज रुक गया । रुका वह स्वयं नहीं, शब्द ही उसकी ज़वान पर न आ सके । वह मौनमुग्ध ललिता की मुख-छवि निहार रहा था, मानो उसके सूखे जीवन में हरियाली की एक आशा-किरण के उसे दर्शन हुए हों ।

“मैं अभी तक आपको प्यार करते हुए भी भय खाती थी पंकज ! यही एक विचार मेरे हृदय को टुकड़े-टुकड़े कर डालता था कि मेरा आप पर कोई अधिकार नहीं । मैं पाप से डरती थी पंकज ! पाप मैं नहीं कर सकती । किसी अन्य की वस्तु पर अधिकार करना अधर्म है ।”

“परन्तु अब तो तुम्हें निश्चय हो गया कि वह पाप नहीं है ललिता ! तुम मेरे जीवन को नहीं समझ पाईं । मेरे जीवन में एक बार मिल जाओ ललिता । फिर तुम स्वयं जान जाओगी...” प्रेमातुर होकर पंकज कहता-कहता रुक गया ।

“अधिक आवश्यकता नहीं है अब पंकज ! मेरा जीवन सँभालकर ठुकरा न देना । बस यही प्रार्थना है मेरी । नहीं तो मेरे साथ मेरे वृद्ध पिता का जीवन भी नष्ट हो जायेगा ।” सरल भाव से ललिता ने कहा ।

“क्या कह रही हो ललिता ? क्या तुमने मुझे...”

“यह बात नहीं है पंकज ! परन्तु मेरा हृदय बड़ा कमजोर है । एक बार सँभाल कर उसे ठेस न देना । यह टूट कर टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा । नष्ट हो जायेगी यह जीवन-कहानी । जो सत्य है उसे पहिले से बतला रही हूँ और कुछ नहीं ।”

“विश्वास रखो ललिता ! मेरे रहते तुम और मैं एक ही परिस्थिति में रहेंगे । कभी दो नहीं होंगे ।”

“बस—बस !”

फूल लेकर ललिता चली ।

फिर रोज़ बाग और गंगा-किनारे भेंट होने लगी । एक महीना निकल गया । दोनों की इसी प्रकार भेंट होती और न जाने कितनी-कितनी देर तक बातें भी ।

एक दिन पंकज बैठा हुआ दोपहर दस बजे ऊँग रहा था कि डाकिये ने एक पत्र लाकर उसके हाथ में दिया ।

पद्मा का पत्र था यह जानने में अधिक देर न लगी । जब से गई थी यह पहिला ही पत्र था । आँखों की नींद गायब हो गई । भट से खोल कर पढ़ना शुरू किया । ऊपर ही लिखा था “श्री महाशय पंकज जी” देखते ही पंकज दंग रह गया । खूब लिखा है ऊपर ही । जनाब पंकज जी । जब प्रारम्भ ही इस तरह से हुआ तो आखीर में तो न जाने क्या ज़हर उगला गया होगा ?

इन्हीं विचारों में डूबे हुए पत्र आगे पढ़ना शुरू कर दिया । लिखा था “अब तो आप भी तहजीब याफता लोगों के दायरे में आ सकते हैं, क्योंकि कई-कई लड़कियों पर प्यार के फंदे डालने लगे हैं ।

लोकनगर आना चाहती थी । सोचा था कि शायद तुम मेरे बिना परेशान होगे, लेकिन मालूम हुआ है कि ललिता तुम्हारे काम आ जाती है । इसीलिए आने का इरादा मुलतबी कर दिया ।

फिर तुम्हें मेरी ज़रूरत भी क्या है ? दोस्त तो मेरे भी बहुत काफी

हैं। लेकिन अब मैंने उन्हें कम करने का इरादा कर लिया है। मैं समझने लगी हूँ कि जीवन का आनन्द एक की होने में ही है।

लेकिन अब...

खैर जब मैं सीधे रास्ते पर आने को हुई तो तुम फिसल पड़े।

पता नहीं इन दो जीवनो का क्या होने को है? परन्तु इतना तो निश्चय ही है कि मैं अपने काँटे को अपने मार्ग में नहीं देखना चाहती।

तुम्हारी
पच्चा।”

खत को पढ़ कर पंकज को पसीना आ गया। वह कुछ भी नहीं समझ सका, आखिर यह उसने लिखा क्या है? अमृत और विष की धारा साथ-साथ बहा दी है—

क्या वास्तव में वह सीधे मार्ग पर आना चाहती है? यदि यही बात है तो...।

परन्तु नहीं। यह असम्भव है। मुझे धोखा देने के लिए...परन्तु मेरे पास धोखा देने के लिए है ही क्या?—

ललिता उसके मार्ग का काँटा है। मेरे हृदय की देवी है ललिता—

परन्तु मैं विवाहित हूँ। मैंने यह पाप किया। माना कि मेरी इच्छा से यह विवाह नहीं हुआ था परन्तु फिर भी उसका भार तो मुझ पर ही है। मैं पद्मा का जीवन-साथी बना था। उसके साथ अग्नि के समक्ष सात फेरे लिये थे।

क्या किया मैंने आखिर? पंकज विचारों के विचित्र शशोपंज में फँस गया।

आज पंकज बाग में भी नहीं गया। गंगा पर भी ललिता बाढ़ जोहती रही। वहाँ भी पंकज नहीं पहुँचा।

खाना बनाने में ललिता का मन नहीं लगा। दाल जल गई।

“आज दाल जला दी बेटी !” खाना खाते समय ललिता के पिता ने कहा ।

“हाँ पिताजी ! तनिक दरवाजे पर खड़ी हो गई थी । कुछ ख्याल नहीं रहा ।” ललिता ने उत्तर दिया ।

“इधर पंकजबाबू को कई दिनों से नहीं देखा बेटी ! कहीं बाहर तो नहीं चले गये हैं ।” सहज भाव से पूछा ।

“पता नहीं पिताजी मुझे भी नहीं मिले कई दिन से ।” ललिता ने अपने पिता की बात का उत्तर दिया ।

“क्यों क्या बाग में भी नहीं मिले ?” उत्सुकता से पिता ने पूछा ।

“मैं जल्दी ही फूल लेकर चली आई थी पिताजी ! आज गंगा-तट से भी तो जल्दी ही आ गई थी ।” मन के भावों को छुपाते हुए ललिता ने कहना चाहा परन्तु वृद्ध से बात छुप नहीं सकती थी । ललिता की मनोदशा को वह भली भाँति समझता था । यह जानते हुए भी उसकी दिशा गलत थी, वह उस प्रवाह को रोक नहीं सकता था । इसीलिए ललिता की स्वतन्त्र आकांक्षाओं के मार्ग में बाधक बनना उसने कभी उचित नहीं समझा । परन्तु उसका दिल सर्वदा भयभीत रहता था । वृद्ध ने दुनियाँ देखी थी । एक जमींदार और दीन ब्राह्मण की कन्या का भला क्या प्रेम ? परन्तु ललिता के हृदय को ठेस पहुँचाना उसकी सामर्थ्य की बात नहीं थी । उसका पैतृक प्रेम वास्तविकता का रास्ता रोक देता था ।

खाना खाकर रामनाथ अपनी खटिया पर लेट गये और ललिता ने वर्तन साफ करने शुरू कर दिये ।

“रोटी नहीं खाई तूने बेटी !” रामनाथ ने पूछा । “आज बिना खाना खाये ही वर्तन साफ करने शुरू कर दिये ।”

“वर्तन साफ करके खाऊँगी पिताजी ।” ललिता ने सकुचाकर कहा ।

“पगली, पहिये रोटी खा लेती । खराब हो जायेंगी । बासी खाने में जाने क्या मज़ा आता है तुम्हें ?”

ललिता मुस्करा दी ।

कई दिन हो गये । पंकज अपने मकान से बाहर नहीं निकला ।

ललिता एक दिन वहीं पहुँच गई ।

“क्या तबियत खराब है ?” ललिता ने विनम्र भाव से पूछा ।

“हाँ कुछ ठीक नहीं थी ललिता ! आज तुम जाओ ! कल मिलेंगे ।” गम्भीर मुख-मुद्रा से पंकज ने कहा । यह पंकज का विचित्र व्यवहार था ।

ललिता उलटे पैरों लौट आई । उसकी आँखें खुली की खुली ही रह गईं !

पंकज का यह रूप उसने कभी भी नहीं देखा था । आज पाँच दिन बाद मिलने पर भी इस प्रकार...कहाँ उसे स्वयं ही आना चाहिये था ? कितने प्रण किये थे ? क्या-क्या बातें कही थीं ? क्या-क्या आश्वासन दिये थे ? और उन सबका यह रूप !

यह दुनिया है ।—

आज ललिता अपने मकान के अँधेरे कमरे में बैठकर खूब रोई । जी खोलकर रोई । इस प्रकार रोने का यह पहिला ही दिन था ललिता के जीवन में । ललिता ने एकांत कोने में बैठ कर सोचा कि शायद अब रोने का जीवन प्रारम्भ होना चाहता है । वह भय से काँप उठी ।

पंकज की दशा कुछ अच्छी नहीं थी । मन में बार-बार विचार करता था कि क्या उसने वास्तव में ललिता से प्रेम करके ग़लती की ; माफ़ किया ?—

पद्मा के हृदय में भी उसके लिये क्या किसी कोने में कोई स्थान था ?

था अवश्य । उसने उसे पहिचानने में ही भूल की । परन्तु उसने भी तो उसका सर्वदा अपमान किया । एक बार तो...।

पंकज विकल हो उठा। पागल की तरह वह अपने मकान के वरांडे में इधर से उधर घूम रहा था।

दूसरा पत्र आया, तीसरा पत्र आया। और दोनों ही बड़े मजेदार थे !

सारांश यह था कि दोनों में पंकज को खूब बेवकूफ बनाया गया था। वह पढ़ कर दंग रह गया। बड़े-बड़े प्यारे शब्दों का प्रयोग पंकज के लिये हुआ था। ‘प्यारे कुपड़ पति’ ‘मेरे हृदय में बसने वाले छलिया’ ‘मेरी फूटी आँखों के सितारे’ ‘मेरे मजेदार गुप-चुप बसन्त’ इसी प्रकार और भी कई प्रकार पत्र में पंकज की याद की गई थी। पंकज को सह-लाया और दुलराया गया था, दुतकारा और फटकारा गया था।

आखिर यह है क्या बला ? स्त्री है या अप्सरा !—देवी है या दानवी ! पंकज का सारा जीवन मानो किसी आँधी के चक्कर में पड़ कर झुकझोर दिया गया।

मैंने अन्याय किसके साथ किया ? पद्मा के साथ किया या ललिता के साथ।—अब यही प्रश्न था उसके मस्तिष्क में। उसे क्षमा किससे माँगनी चाहिए।

हाँ मैंने अन्याय केवल अपने ही साथ किया। अपने ही साथ किया है बस।—अन्त में पंकज के मन ने यही निश्चय किया। पंकज के जीवन में एक तूफान आ गया। वह किर्तव्य-विमूढ़ सा पागल की तरह बड़-बड़ाता हुआ अपने मकान में इधर से उधर घूमता रहता था।

पद्मा के पत्रों ने पंकज का दिमाग खराब कर दिया।

आज सुबह पंकज को ललिता फूल लेने आती नहीं दिखलाई दी। गंगा पर भी नहीं मिली।

पंकज सीधा ललिता के घर पहुँच गया।

“आज ललिता फूल लेने नहीं आई बाग में ?” पंकज ने रामनाथ से पूछा।

“बेटा ! ललिता को कल से बुखार आ रहा है । फिर भला फूल लाने वाला यहाँ कौन था ?” सरलतापूर्वक रामनाथ ने उत्तर दिया ।

“बुखार !” पंकज पत्थर की मूर्ति के समान जड़ हो गया । “यह कैसे हुआ कब से हुआ ?” व्याकुल होकर पंकज ने एक ही साँस में दोनों प्रश्न किये ।

“कल बहुत तेज बुखार था बाबू ! कुछ बतलाती भी नहीं । हकीम जी को दिखलाया था । वह कहने थे कि इसने कई दिन से खाना नहीं खाया है । दिमाग में खुश्की दौड़ गई है ।” कहते-कहते रामनाथ चुप हो गया ।

“खाना नहीं खाया ।” आश्चर्यचकित होकर पंकज ने सुना “कई दिन से खाना नहीं खाया ! यह आप क्या कह रहे हैं । परन्तु क्यों खाना नहीं खाया ?”

“नहीं मालूम बाबू । लेकिन खाया नहीं यह मैं भी जानता हूँ ।”

पंकज सब समझ गया । ललिता के आत्म अभिमान को पंकज खूब पहिचानता था । उसी ने उसे ठेस पहुँचाई थी, यह उससे छिपा नहीं था । अपने व्यवहार के प्रति वह इस समय बहुत लज्जित था । आज भूख से तड़पती और ज्वर में जलती हुई ललिता के रूप में पंकज ने प्रथम बार अपने पाप-कार्य का फल देखा । वह काँप उठा । उसका शरीर पसीना-पसीना हो रहा था ।

वह चुपचाप ललिता के कमरे में चला गया ।

“ललिता !”

ललिता ने आँखें खोल दीं । “पंकज” फिर आँखें बन्द कर लीं ।

“बुखार आ गया ललिता !” पंकज ने ललिता की खटिया की पट्टी पर उसके पास बैठ कर उसका भभकता हुआ हाथ अपने हाथ में लेकर कहा ।

ललिता नहीं बोली ।

“ललिता मुझे पता नहीं था। मेरा अपराध क्षमा कर दो ललिता ! मैं तुमसे क्षमा चाहता हूँ।” बहुत ही दीन भाव में पंकज कह रहा था।

“क्या कह रहे हो पंकज ? तुमने किया ही क्या है जिसके लिये क्षमा चाहते हो। मैंने तो यों ही आँखें मीच ली थीं।” डबडबाई आँखों को लेकर लड़खड़ाती जबान से ललिता ने कहा।

दोनों अपने हृदय के भावों को ज्वलत कर गये। पंकज का दिल हल्का हो गया। वह प्रसन्न था कि ललिता ने उसका अपराध क्षमा कर दिया।

“कब आया बुखार ?” पंकज ने पूछा।

“कल।”

पंकज स्वयं हकीम को बुला कर लाया और चार पाँच दिन जब तक ललिता बिलकुल स्वस्थ नहीं हो गई अपना पूरा समय उसने ललिता के पास ही दिया। बहुत शीघ्र ही ललिता फिर बाग़ से फूल लेने और गंगा नहाने जाने लगी। वह पहिले की ही भाँति स्वस्थ हो गई और उसके जीवन में वही पुरानी ताज़गी और चहल-पहल आगई जिसे लेकर पंकज और ललिता ने अपने जीवन का नया अध्याय आरम्भ किया था।

: ४ :

“मेरी बुढ़ापे की लकड़ी न तोड़ देना बाबू ! मैं तुम पर विश्वास करता हूँ। तुम्हारे जीवन की कोई बात मुझसे छिपी नहीं है। मैं जानता हूँ कि तुम्हारे पास कुछ नहीं है। तुम्हारे जीवन के साथ ही तुम्हारी ज़मींदारी का भी स्वप्न चल रहा है। परन्तु मुझे उस पर क्या विचार करना है भला ?”

“पंडितजी.....”

“अच्छा तो यही होता बेटा ! कि मैं तुम दोनों को पहिले से ही

दूर रखता। तुम विवाहित हो, तुम्हारी स्त्री है।...” बूढ़ा काँप रहा था। यह अनर्थ था उसकी दृष्टि में परन्तु उसे रोकने की शक्ति नहीं थी उसमें।

“परन्तु वह।”

“यह मत कहो, परन्तु आज मैं ललिता को भी नहीं रोक सकता। बात अब हाथों से बाहर जा चुकी है। देखना पंकज कहीं ललिता की नाव को बीच धार में न छोड़ देना। मेरा तो अब कोई विश्वास नहीं, आज नहीं कल मरना ही है।” गम्भीरता पूर्वक रामनाथ ने कहा।

“आप क्या कहने लगे पंडितजी ! मैं केवल आपका आशीर्वाद चाहता हूँ। ललिता मेरे प्राणों से भी अधिक है मेरे लिये। मैं उसे धोखा नहीं दूँगा, कभी नहीं दूँगा आप विश्वास रखें।”

“तुम विवाह करना चाहते हो ललिता के साथ ?” रामनाथ ने पंकज से सीधा प्रश्न किया।

पंकज चुप रह गया। इसका कोई उत्तर उसके पास नहीं था।

“मैं कुछ नहीं कहता। तुम दोनों की इच्छा को दबाकर मैं अपने हाथ नहीं रंगना चाहता। मैं पूरी स्वतंत्रता देता हूँ तुम्हें। मैंने ललिता से भी यही बात कह दी है। परन्तु पंकज—एक बार फिर विचार लो। तुम लड़के हो। लड़के के जीवन की समस्या लड़की के जीवन से भिन्न होती है।”

“अधिक कहने की आवश्यकता नहीं पंडितजी ! आपके उपकार को मैं—” कहता-कहता पंकज चुप हो गया।

“मेरे पास केवल ललिता है बाबू !” पंडित रामनाथ दीन भाव से बोले।

“मैं और कुछ चाहता भी नहीं पंडितजी ! पद्मा के पास सब कुछ है, तभी तो उसे मेरी आवश्यकता नहीं। मैं उसे चाहता हूँ जिसे मेरी आवश्यकता हो।” पंकज ने पलकें नीचे गिराकर पंडित रामनाथ के सामने नम्रता पूर्वक कहा।

पंकज ने विवाह का निश्चय कर लिया । ललिता के जीवन में भी एक उमंग आ गई । विवाह की तिथि निश्चित हो गई ।

आज चार महीने हैं विवाह के । अभी से पंकज ने तैयारियाँ करनी प्रारम्भ कर दीं ।

पद्मा के पिता को सब मालूम हो गया । कितने ही पत्र लिखे उन्होंने, परन्तु पंकज ने कोई उत्तर नहीं दिया । आखिर परेशान होकर वह स्वयं वहाँ आये, परन्तु पंकज का इरादा नहीं बदल सके ।

पद्मा ने न कोई पत्र ही लिखा और न आने की ही कोशिश की । वह भी मान की पुतली थी । बड़े बाप की बेटी थी । बाप जाये तो जाये परन्तु वह पंकज जैसे जंगली के सामने भुकने को उद्यत नहीं थी । वह शादी करना चाहता है तो कर ले पद्मा पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता ।

तीन महीने रह गये ।

दो महीने रह गये ।

एक महीना रह गया ।

आज पंकज को हल्का-सा बुखार था । ललिता के मना करने पर भी वह गंगा में नहा लिया ।

“मैं मना कर रही हूँ कि आप आज न नहायें । आपकी तबियत अच्छी नहीं है । गंगा का पानी, देखते नहीं कितना ठंडा है ? हाथ कटे जा रहे हैं शीत से ।”

“कोई नया पानी तो है नहीं । नहाने से तबियत साफ़ हो जाती है । फिर यह तो गंगा-जल है । क्यों ? सब ठीक हो जायेगा नहाने से । थोड़ा-सा जुकाम है, सो बह जायेगा ।” मुस्कराते हुए पानी में घुस कर पंकज ने कहा ।

“आप व्यर्थ की ज़िद किया करते हैं । किसी की बात मानने की तो आपने कसम ही खा ली है ।” मुँह बनाकर ललिता ने कहा ।

“बस बिगड़ने लगीं ज़रा-सी बात पर ।” ललिता की ठोड़ी को तर्जनी से ऊपर उठाते हुए पंकज ने कहा ।

“बिगड़ने की भला क्या बात है ? लेकिन आपकी तबियत खराब है आज नहाइये मत । मैं फिर यही कहती हूँ ।” इतनी ज़िद पहिले कभी ललिता ने नहीं की थी परन्तु आज उसका मन नहीं कह रहा था कि पंकज नहाये ।

एक तरफ मरा हो रही थी और दूसरी ओर पंकज मुस्कराता हुआ पानी में घुसता जाता था । धीरे-धीरे उतर रहा था पानी की धारा में धोती चढ़ाता हुआ ।

आखिर डुबकी लगा ही ली ।

ललिता जाने क्यों एक करेरी के साथ काँप उठी । उसका तमाम शरीर थरथरा उठा ।

“आप जल्दी के बाहर निकल आइये ।” ललिता ने भयभीत स्वर में फिर कहा ।

“ऐसा करोगी तो फिर कभी नहाने नहीं आऊँगा ।” मुँह बिचकाकर पंकज ने कहा ।

“अच्छा मत आना, लेकिन आज निकल आओ । जल्दी से कपड़े पहिन लो । मैं कहती हूँ आप मेरा कहना मान लो ।” ललिता ने कहा ।

पंकज ने अब ज्यादा ज़िद नहीं की । कुछ उसे भी काँप-काँपी-सी छूटने लगी थी । वह पानी से बाहर निकल आया । ललिता ने बदन पोंछने को तौलिया दे दिया ।

कपड़े बदल कर दोनों ने घर की राह ली ।

ललिता ने घर पहुँच कर जल्दी से खाना बनाया और फिर पंकज के कमरान की ओर चल दी । उसका मन किसी आशंका से घिरा हुआ था । पंकज ने आज बुखार में नहाकर अच्छा नहीं किया । कितनी बुरी ज़िद करते हैं कि मानो कहने का कोई असर ही नहीं होता । आदमी को अपने स्वास्थ्य का तो ध्यान रखना ही चाहिए ।

“कहाँ जा रही है बेटी ?” रामनाथ ने पूछा ।

“जरा उन्हीं की तरफ जा रही हूँ । आज कुछ तबियत ठीक नहीं थी ।”

“क्यों ऐसी भी क्या जल्दी है कि खाना भी नहीं खाया ? अभी साथ ही-साथ तो गंगा से आये होंगे ! खाना खाकर चली जाना ।” उतावलेपन से रामनाथ ने कहा ।

“उनकी तबियत खराब है कुछ । अभी आकर खाना खा लूँगी ।” खाना कटोरदान में बन्द करते हुए ललिता ने उसे छीके पर रखकर कहा ।

पंकज को बुखार हो गया था ।

मामूली बात थी कम्बल ओढ़कर लेट गया था वह ।

“तुम आ गईं ललिता ।”

“कम्बल ओढ़ लिया । मैंने पहिले ही—”

“कोई बात नहीं है ललिता ! जरा सर्दी-सी लगने लगी थी । इसी-लिये कम्बल ओढ़ लिया । हाँ तुम जरा-सी चाय बना दो । चाय पीकर अभी तबियत ठीक हो जायेगी ।”

थोड़ी ही देर में ललिता ने चाय तैयार कर दी । एक गिलास में गरम चाय अंगोछे पर रख कर ले आई ।

“बड़ी अच्छी है मेरी रानी !” कहते हुए पंकज ने गिलास अपने हाथों में ले लिया ।

“तुलशा के पत्ते...”

“डाल दिये हैं मैंने । काली मिर्च भी दो डाल दीं हैं ।”

“तुम बड़ी होशियार हो ।” कहते हुए पंकज के नेत्रों में प्रेमाश्रु छलक आये ।

तनिक-सी देर में पंकज का दिल न जाने कितना ललिता की ओर खिंच गया । कितना अपनापन था उसमें । पंकज ने ललिता में अपनी आत्मा के दर्शन किये ।

ललिता वास्तव में देवी है ।—सहज प्रेम की पराकाष्ठा । इस जीवन का मधुर मिठास भला किस रुखे-सूखे जीवन को आनन्द, उमंग और मधुरता से नहीं भर सकता ।

एक पद्मा है । क्या उसने कभी इस प्रकार चाय बना कर पिलाई ? क्या उसने कभी मेरी तबियत की इस प्रकार परवाह की ?

वह एक धनाड्य की कन्या है । धन वाले लोग भला क्या जानें कि प्रेम किसे कहते हैं ।—

उनमें अपनापन नहीं होता । वे हर चीज का मूल्यांकन पैसे से करते हैं ।

“ललिता देवी है । मेरे हृदय की रानी है ।” पंकज का जीवन हलका हो गया । उसे लगा कि मानो बहुत बड़ा बोझा ललिता ने उसके सिर से उतार कर एक ओर पटक दिया ।

“आप सोचने क्या लगे ? चाय गर्म-गर्म पी लीजिये और पीकर तनिक मुँह ढँक कर सो जाइये । पसीना आने से बदन खुल जायेगा ।” पास बैठते हुए ललिता ने कहा ।

पंकज ने चाय पीनी शुरू कर दी ।

“तुम मेरी जीवन-सहचरी हो ललिता ! तुम मेरी रानी हो ।” कृत-ज्ञता प्रकट करते हुए पंकज कह रहा था ।

“आप व्यर्थ के लिये चाय ठंडी कर रहे हैं ! इसे पीकर सो जाइये और देखिये मुँह मत उघाड़िये । मैं यही बैठी हूँ । कहीं बदन में दर्द हो तो दबा दूँ ।”

पंकज चाय पीकर लेट गया । उसने मुँह ढक लिया । ललिता ने धीरे-धीरे उसके हाथ पैर दबाकर सुला दिया ।

फिर धीरे से किवाड़ बन्द करके अपने घर चली आई । बर्तन वगैरः साफ करके खाना खाया, परन्तु खाना आज अच्छा नहीं लगा ललिता को ।

किसी प्रकार पेट भर लिया ।

“कैसी तबियत है बेटी पंकज की ?” रामनाथ ने पूछा ।

“जरा बुखार-सा हो गया पिताजी ।”

“बुखार !” कुछ घबराकर रामनाथ ने सुना ।

“जी ।”

“फिर सुबह पानी में नहा लिया होगा बेवकूफ । तूने भी मना नहीं किया होगा । देखती नहीं हो गंगा का पानी कितना ठंडा होता है ।” रामनाथ बोले ।

ललिता चुप रह गई ।

“संध्या को हकीम को दिखला देना ।”

“अच्छा बात है पिता जी ! लेकिन संध्या तक तो बुखार उतर ही जायगा तुलसा की चाय पिलाकर आई हूँ । कुछ तो फायदा वह अवश्य ही करेगी ।”

“जरूर फायदा करेगी । ठीक हो जायेगा एक दो दिन में । कोई परेशानी की बात नहीं है ।” साहस बँधाते हुए रामनाथ बोले ।

संध्या को हकीमजी आकर देख गये । कोई खास बात नहीं थी । मामूली बुखार था । उतर जायेगा । दवा की पुड़िया दे गये ।

ललिता पास ही बैठी थी । सोते-सोते आँखें खुल गईं । “अरे ! तुम अभी सोई नहीं ! क्या बज गया होगा भला ललिता ?”

“कुछ अधिक नहीं ।”

पंकज की निगाह सामने टँगी घड़ी पर पहुँच गई । “अरे ! एक बज गया और तुम यहीं पर बैठी हो । पड़ितजी बाट देख रहे होंगे ।

चलो मैं पहुँचा आता हूँ । मुझे कुछ पता ही नहीं रहा । ऐसी नींद आई कि बस चित्त हं गया ।”

“आप लेटे रहिये । मैं स्वयं चली जाऊँगी ।”

“इतनी रात को ?”

“रात क्या है ? चाँदनी रात है ।”

“गोया चाँदनी रात रात नहीं होती ।”

“मैं चली जाती हूँ वैसे तो ।”

“क्या कह आई हो पिताजी से ? अच्छा, समझ गया । तो फिर जागने की अब क्या जरूरत है ? दूसरी खाट बिछाकर आराम कर लो । अब मेरी तबियत बिलकुल ठीक है ।” पंकज ने सरल भाव से कहा ।

“दुखार भी मालूम होता है अब छूट गया । हमारे हकीमजी की दवा बड़ी कारगर होती है ।” पंकज इस समय प्रसन्न था ।

“बड़े अच्छे हैं बेचारे ! बस एक बार कहने भर की देर है कि उठे चले आते हैं । फिर आपके नाम से तो नंगे पाँव दौड़ आने के लिये तैयार रहते हैं । मैंने कहा पोछे था, पहिले वह चल दिये ।”

“पिताजी के मित्र हैं यह ललिता ।”

“अच्छा ! बड़े सज्जन हैं ।”

पंकज को नींद आ गई । ललिता फिर भी जागती ही रही । आज रात भर वह सो ही न सकी । पंकज के मकान में रात भर रहने का यह उसका पहिला ही अवसर था । प्रयत्न करने पर भी वह न सो सकी तो उठकर उसने टहलना प्रारम्भ कर दिया और टहलते-टहलते ही सुबह हो गई ।

५

विनोद बाबू जिनसे पद्मा का खास तौर पर दिल मिला हुआ था उन्होंने एक ऐंग्लो इण्डियन लड़की से अपना रिश्ता जोड़ लिया । मेम न सही यह कुछ-कुछ तो मेम जैसी थी । पहिले पद्मा पर प्यार था क्योंकि वह इण्डियन होते हुए भी किसी मेम से कम न थी । अब ऐंग्लो इण्डियन मिल गई । लाजमी तौर पर यह पद्मा से किसी कदर आगे थी । फिर किसी मेम के मिलने पर इन नई मिस मेरी को भी स्तीफा दिया जा सकता था । तरक्की पसन्द लोग इसी तरह कदम-ब-कदम आगे बढ़ते

हैं। एक के बाद दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी सीढ़ी पर ही तो कदम रख कर आदमी मंज़िले मक़सूद पर पहुँच सकता है।

वास्तव में विनोद बाबू बड़ी ही स्वतंत्र प्रकृति के मनुष्य थे। पद्मा भी इनके साथ रहकर इन्हीं जैसा बनने का पोज़ किया करती थी, परन्तु असर उलटा ही हो गया।

विनोद बाबू तो स्वतंत्रता के मास्टर थे। एक और पद्मा के मित्र मिस्टर प्रकाशबाबू थे, परन्तु यह कुछ दूर-दूर की ही जान-पहचान के पसन्द करने वाले थे। इनका रुख भी बदल गया था। विनोदबाबू की जैसी स्वतंत्रता इनके दिमाग को नहीं मिली थी इसीलिये यह शादी के चक्कर में फँस गये और नई बीबी ने ऐसा टोना किया कि बस उसके ही हो रहे। सब क्लब बगैर छूट गया। पुराने मेल-मुहब्बत, इश्क और प्रेम, लगाव और चिपकाव, खिचाव और आकर्षण, सब समाप्त हो गये। नई पत्नी क्या लाये कि मंमरी के समान हर समय उसके ही इर्द-गिर्द चक्कर लगाने में उनका अधिकांश समय निकलने लगा। उनकी ही फरमाइशें इतनी थीं कि उनसे समय निकालना कठिन था। बड़ा ही बिज़ी प्रोग्राम बन गया था आज कल आपका।

मिस्टर श्याम, मिस्टर अहसान, मिस्टर चटर्जी, मिस्टर खेर, मिस्टर चन्द्रप्रकाश इत्यादि से तो काफी दिन हुए नाता समाप्त हो चुका था। कुछ तो कलकत्ता ही छोड़ गये थे और कुछ अपने कारबार में इतने फँस गये थे कि उनके पास अब पुरानी दिलचस्पियों के लिए कोई समय नहीं था। बार और क्लब में कभी चले गये तो चले गए वरना रोज का सिल सिला बन्द हो चुका था।

पद्मा के पास कोई ऐसा कारोबार नहीं था। उसका जीवन अकेला हो गया। परन्तु परेशानी यह थी कि अकेले रहने की उसे बान नहीं थी। उसका आज तक का जीवन चहल-पहल का जीवन था। उसे एकदम एकाकी बनाना कठिन था।

इस एकाकीपन में उसे एक दिन बैठे हुए पंकज की याद आई।

पहिले दो-तीन पत्र तो दोस्तों के बीच से लिखे थे, परन्तु अब एक पत्र अपने विचारों से लिखने का विचार किया। उसने चाहा कि वह अपनी वास्तविकता को उस पत्र में उडेल दे।

एक लम्बा खन लिख डाला। कितनी ही जगह उसमें अपनी गलतियों की माफी माँगी। लिख कर एक बार पढ़ना शुरू किया। पढ़ते-पढ़ते एक माफ़ी पर आत्म-सम्मान को ठेस लगी, और ठेस के ही साथ पत्र फाड़ कर वेस्टपेपर बास्केट में डाल दिया।

फिर न जाने क्या-क्या सोचने लगी। 'नहीं मैं जीवन भर अकेली रह सकती हूँ, परन्तु आत्म-सम्मान को हाथ से नहीं जाने दे सकती।

ये पुरुष स्त्रियों को कुछ समझते ही नहीं। माफ़ी माँगना स्त्रियों का काम नहीं।

मैं ऐसे हिन्दू धर्म को नहीं मानती। बस कुछ भी नहीं। कोई पत्र नहीं।

इसी प्रकार विचारते हुए उसे ललिता का ध्यान आ गया। आँखें लाल हो गईं उसकी। मुँह से अपने आप शब्द निकलने लगे 'ललिता—ललिता यही इस समय मेरे मार्ग में काँटा बन कर आई है।

इस काँटे को मैं काटकर ही छोड़ूँगी। मैं इसका सर्वनाश करके ही दम लूँगी। मुझे अपने पैरों में रोंद कर यह मेरी छाती पर अपना आसन बिछाना चाहती है।

एक विवाहित पुरुष से प्यार करने का उसे क्या अधिकार है ?

क्यों उसने मेरे पति को अपने जाल में फँसा ?

क्या मेरे जाने पर भी वह...पिताजी का उन्होंने अपमान किया। मेरा अपमान करने में ही फिर उनका क्या जाता है। अपमान सहन मैं नहीं कर सकती। यह प्राण अपमान सहन करने से पूर्व ही इस संसार से विदा हो जायेंगे।' पद्मा का मन ग्लान हो उठा। उसकी आँखों में आँसू भर आये। उसने आज जब चारों ओर दृष्टि दौड़ाई तो उसे सूना-सूना दिखलाई दिया।

अब जीवन में वह आनन्द नहीं रहा जिसका स्वप्न उसने विनोद का पत्र पाकर लोकपुर में देखा था। एक दिन विनोद पद्मा के घर पर आया।

“कहिये कैसे आज इधर भूल पड़े ?” व्यंग्य करते हुए पद्मा ने कहा।

“यों ही ज़रा तुमसे मिलने को जी चाहा और चला आया ?” विनोद ने पास पड़ी कुर्सी सँभालते हुए कहा। बड़ा ही बेतकलुफ आदमी था विनोद।

“क्यों क्या मेरी ने आपके आने में कोई बाधा डाली ?” पद्मा ने पूछा।

“क्यों ?” जैसे कोई विचित्र बात कह डाली पद्मा ने।

“मैं पूछ रही हूँ।” पद्मा ने कहा।

“उसे बाधा डालने का कोई अधिकार मैंने नहीं दिया। मैं भी उसके किसी कार्य में कोई बाधा नहीं डालता। वह हर काम के लिये स्वतंत्र है। जहाँ भी उसका जी चाहें जा सकती है। जहाँ जी चाहे घूम सकती है।” विनोद बाबू ने मुस्कराते हुए हाथ लचकाकर कहा।

“हाँ लेकिन ये बातें तो हमारी हुई थी।” मानो पद्मा ने समझा कि ये बातें होने के पश्चात् उन पर उसकी मोहर लग गई और अब ये अन्य किसी की नहीं हो सकतीं।

“लेकिन अब”, पद्मा ने फिर पूछा।

“अब तो बिलकुल स्वतन्त्रता है।” विनोद ने गम्भीरता पूर्वक कहा।

“इसका मतलब ?” पद्मा ने पूछा।

“मतलब यही कि आज पाँच दिन से वह लापता है।” मुस्कराते हुए विनोद ने कहा।

“इसीलिये आप इधर चले आये।” पद्मा ने दिल में भारीपन लेकर कहा।

“ऐसा ही समझ लो।”

“तुम बड़े बुरे हो विनोद !” पद्मा ने कहा ।

“कोई विशेष बात तुमने नहीं कही पद्मा ! ऐसा तो सभी लड़कियाँ कहती हैं । हाँ चलो नुमाइश चलोगी । आज ही से शुरू हुई है ।”

“चलती हूँ ।”

पद्मा तैयार हो गई । मोटर से दोनों नुमाइश के दरवाजे पर पहुँचे और टिकट लेकर अन्दर चले गये ।

“देख रहे हो वह कौन है ?” पद्मा ने एक ओर संकेत करते हुए कहा ।

“मेरी है ।” बिना विचलित हुए विनोद ने कहा ।

“तो बुलाते नहीं उसे !”

“नहीं यह ठीक नहीं है । मैंने स्वतन्त्रता जो दे रखी है । जहाँ चाहे घूमें । जब जी चाहेगा आ जायेगी । चलो हम उधर सर्कस की तरफ चलते हैं ।” और इतना कहकर दोनों ने उस ओर से मुँह फेर लिया ।

“तुम भी अजीब आदमी हो विनोद !” पद्मा ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा ।

ये सर्कस की ओर चले तो मेरी भी उसी ओर जा पहुँची । उनके साथ वाले साहेब को गौर से देखकर पद्मा ने कहा—“अरे यह तो मेरी के साथ मिस्टर चटर्जी जा रहे हैं । बड़े हज़रत हैं भई !” कहकर पद्मा मुस्करा दी । मानो अब यह कोई नई बात नहीं थी । विनोद के लिए तो वास्तव में यह पुरानी बात थी । वह जानता था कि मेरी दो-चार दिन में अपने आप उसके पास आ जायेगी ।

“तुम बड़ी बावली हो पद्मा ! फ़िज़ूल की बातों में जाने क्यों मुझे भी परेशान करना चाहती हो । नुमाइश देखने आये हैं यहाँ या मिस्टर चटर्जी और उनके साथ मेरी को देखने ।” हँसकर पद्मा के हाथ को अपने दोनों हाथों में लेकर दबाते हुए विनोद ने कहा ।

दोनों और आगे बढ़े और सर्कस के टिकट घर पर पहुँच गये । मिस मेरी भी वहीं पर आ गयी और मिस्टर विनोद को देखकर बड़े तपाक

से बोली, “ओहो ! मिस्टर विनोद ! इधर कई दिन से मिस्टर चटर्जी ने ऐसा फाँसा है कि मिलना ही नहीं हुआ ।” उसे कोई संकोच नहीं हुआ इन शब्दों के कहने में । पद्मा चाहे कितने ही स्वतंत्र विचारों की क्यों न हो परन्तु इतने स्पष्ट शब्द उसकी ज़बान से निकलने असम्भव थे, और बस यहीं पर वह प्रगति में मेरी से पीछे रह जाती थी ।

“कोई बात नहीं । क्या पता मिस्टर चटर्जी ने आपको फाँसा है या आपने इन्हें फाँसा है ।” उसी तपाक के साथ विनोद ने उत्तर दिया ।

तीनों चारों आदमी ज़ोर से खिलखिलाकर हँस पड़े ।

“यार विनोद तुम हो मज़े के आदमी” चटर्जी ने मुस्कराते हुए कहा । फिर पद्मा की ओर ज़रा विचार-पूर्वक निगाह से देखकर कहा “अरे ! मिस पद्मा ! आप भी यहीं । सुना था कि आप कलकत्ते से चली गई हैं । क्या यह बात ग़लत थी ?” चटर्जी ने प्रश्न किया ।

“जी नहीं ठीक ही था । परन्तु विनोद बाबू की इनायत से फिर कलकत्ता आना पड़ा ।” पद्मा ने उत्तर दिया ।

“विनोद बाबू बड़े भाग्यशाली हैं ?” चटर्जी ने मुस्करा कर कहा ।

“क्यों भाई ऐसी क्या बात है ?” विनोद ने हाथ में हाथ मार कर कहा ।

“अरे भाई तुम पर मिस पद्मा की पहिले से ही नज़र रही है ।”

“मगर आजकल तो मिस पद्मा कुछ हमसे नाराज़ रहती हैं ।”

“क्यों मिस पद्मा क्या यह सत्य है ?” मिस्टर चटर्जी ने सिग्रेट का धुँआ फेंकते हुए कहा ।

“मैं भला क्या कह सकती हूँ ? विनोद बाबू जो चाहें कहें । यह स्वतंत्र आदमी जो ठहरे ।” विनोद की स्वतंत्रता का परिहास करते हुए पद्मा ने तीखे व्यंग से कहा ।

दूसरे दिन पद्मा को नुमाइश अकेले ही आना पड़ा ।

नुमाइश से लौट रही थी कि दरवाजे पर मिस्टर विनोद, मिस मेरी

और एक मेम साहेब के साथ मिल गये। पद्मा को देखते ही कह उठे,
“ओहो ! मिस पद्मा। तुम्हें आज अकेले ही नुमाइश जाना पड़ा।”

“मैं मिस नहीं हूँ विनोद बाबू।”

“भूल गया, माफ़ कीजिए ! हाँ मिसेज पंकज ! आज आपको मिस्टर चटर्जी नहीं मिले ?” विनोद ने प्रश्न किया।

“अरे ! मिस्टर चटर्जी से तो मुझे भी मिलना था।” मिस मेरी ने कहा और वह तुरन्त विनोद का साथ छोड़ कर अलग खड़ी हो गई।

पद्मा अपनी कार पर जा बैठी और विनोद ने सिग्रेटकेस जेब से निकाल कर एक सिग्रेट मेम साहेब को पेश की। पद्मा ने विनोद की बात का कोई उत्तर नहीं दिया।

पद्मा घर आकर अपने कमरे में चली आई। पहिले दिन रात भर उसने विचार किया था, ‘कितना सुखी जीवन होता है, स्वतन्त्रता का भी ?’

विनोद बाबू कितने मजे में हैं। उन्हें दुनियाँ में किसी की भी चिन्ता नहीं। अपनी भी चिन्ता नहीं, जहाँ जी चाहता है जाते हैं। यदि मेरा जीवन भी इतना ही स्वतन्त्र हो जाये तो क्या ही मज़ा है ? मिस्टर चटर्जी और मिस मेरी दोनों ही मजे में हैं। किसी का किसी को मोह नहीं। जब चाहे साथ हो सकता है और जब चाहें वह छूट सकता है। कितना सुन्दर जीवन है ?”

परन्तु आज विनोद के मुख से मिसेज पंकज सुनकर पद्मा का मुँह लटक गया। वह रूँवासी-सी होगई। उसके शरीर में एक प्रकार की न जाने कैसी सिहरन-सी आ गई और उसे लगा कि मानो विनोद ने उसका मज़ाक उड़ाया, उसका अपमान किया। एक अनपढ़ आदमी की स्त्री बनना और कहलाना भी कितनी बड़ी अपमानजनक बात है। पद्मा को अपने माता-पिता की की गई भूल पर पहले तो इतना क्रोध आया कि उसके दाँत आप-से-आप रगड़ खाने लगे और फिर वह अचानक ही एक दम ऐसे शांत पड़ गई मानो पाला मार गया हो और उसके अन्दर का

जीवन समाप्त हो गया हो। वह सोचने लगी, 'वह क्या है ? पंकज क्या है ?'

: ६ :

पद्मा भी जीवन में एक साथी खोजना चाहती है। विनोद उसका साथी नहीं बन सकता, यह निश्चय हो चुका। विनोद जैसी स्वतंत्रता में पद्मा नहीं रह सकती। यह जीवन पद्मा के लिये कठिन हो गया।

आज एक बार फिर पंकज की ओर पद्मा की दृष्टि गई। इस दृष्टि में थोड़ा-सा प्रेम, थोड़ा-सा मोह, थोड़ी-सी श्रद्धा और थोड़ी-सी आवश्यकता थी। अनेकों भावनाओं के सम्मिलित विचार से आज पद्मा ने पंकज को याद किया। आज उसने अपने जीवन के एक भुलाये हुए कोने में झाँका।

पद्मा की स्वतन्त्रता ने किसी को भी क्षमा करना नहीं सीखा था। वह स्वतन्त्रता जो पद्मा अपने लिये चाहती थी उसी की थोड़ी-सी छटा पंकज और ललिता के जीवन में देख कर वह सहन नहीं कर सकती थी।

लोकनगर जाने की प्रबल इच्छा के मार्ग में दो रुकावटें थीं। एक अपने आत्माभिमान पर लगने वाली ठेस की आशंका और दूसरी ललिता। दोनों को ही वह नहीं चाहती थी। दोनों ही के प्रति वह द्वेष करती थी। हृदय में एक जलन पैदा हो उठती थी।

द्वार खुला और विनोद बाबू सामने आकर कोच पर बैठ गये। कुछ देर दोनों चुप-चाप बैठे रहे, परन्तु विनोद अधिक देर चुप नहीं रह सका।

"मैं तुमसे एक बात पूछने आया हूँ पद्मा ! देखो तुम्हारे आज के उत्तर में मेरे जीवन का निर्णय है। अब और अधिक सहन मैं नहीं कर सकूँगा।" वह इस समय बहुत ही गम्भीर था, बहुत ही व्यग्र। उसके हाव-भाव, नेत्रों की पुतली, बैठने के ढँग सभी में आज कुछ विचित्रता

थी। वह विचित्रता जो पहले कभी उसके अन्दर पद्मा ने नहीं देखी थी। न आज वह पहली मुस्कराहट थी न मस्ती, न जीवन की लचक और न ही वह अलहड़पन जिसने पद्मा को प्रथम बार आकर्षित किया था। आज की विनोद की दशा को देखकर उसके गत जीवन का नाट्य अपने असली रूप में पद्मा के सामने आ रहा था। पद्मा स्वयं चकित सी रह गई उसका यह रूप देखकर।

पद्मा कुछ भी नहीं समझ सकी। “कहिये विनोद बाबू ! मैंने तो कभी भी आपको रूढ़ करने का कोई कार्य नहीं किया। मैंने तो सर्वदा ही आपके जीवन को अपने जीवन में ढालने का प्रयत्न किया है। सर्वदा यही चाहा है कि किसी प्रकार मैं आपके.....।” पद्मा कहती-कहती रुक गई।

“मैं पूछने आया हूँ पद्मा कि तुम मेरे साथ चलने को तैयार हो अथवा नहीं। बस हाँ और ना में जवाब चाहता हूँ।” विनोद ने सीधा प्रश्न किया। प्रश्न में कोई हेर-फेर नहीं था। कोई लगाव-दुबकाव नहीं था।

पद्मा अकबकी-सी रह गई। कहाँ, किस लिये, कब तक ? इत्यादि कुछ भी नहीं। एक बात भी नहीं बतलाई और मैं चलूँगी अथवा नहीं। आखिर बात क्या है ? ऐसा तो विनोद को कभी नहीं देखा।

“क्या मैं पहिले यह नहीं पूछ सकती कि हमको कहाँ जाना होगा विनोद बाबू ! किस लिए जाना होगा और कब तक के लिए जाना होगा ?”

“मैं इस स्वतंत्रता से मुक्त होना चाहता हूँ ललिता ! मैं तुमको केवल अपने लिये चाहता हूँ, केवल अपने लिए। इसलिये मैं आवश्यकता नहीं समझता कि बतलाऊँ हमें कहाँ जाना होगा और कब तक के लिये जाना होगा ?”

“इसका मतलब है कि...”

“हाँ वहाँ स्वतंत्रता के लिये कोई स्थान नहीं है।” हम दोनों एक प्रेम-डोर में नहीं बँध सकते क्या पद्मा ? बोलो मेरे प्रश्न का उत्तर दो।

मैंने तुमको प्यार किया, कितना प्यार किया यह कहने की आवश्यकता नहीं। तुम शायद नहीं जानती कि मैंने स्वतंत्रता का अभिनय केवल तुम्हें पाने के लिये किया। केवल तुम्हें अपना बनाने के लिये किया।

‘स्वतंत्रता का अभिनय।’ पद्मा ने कई बार मन में दुहराया। यह क्या कह रहे हैं आज विनोद बाबू ? वह नहीं समझ पाई कि अभिनय करने वाला यह कुशल नट कहीं अब भी तो अभिनय ही नहीं कर रहा है। यदि उसका यह भी अभिनय ही हुआ तो पद्मा के जीवन की क्या गति होगी। पद्मा सिहर उठी।

क्या वास्तव में विनोद बाबू का अभी तक का जीवन एक स्वप्निल अभिनय मात्र ही था ?—

क्या कहीं विनोद के जीवन में स्थिर रहने की भावना भी विद्यमान है ?—

मेरे जीवन को यह सुखी बना सकेंगे ?—

कहीं मेरी जीवन-नौका की पतवार एक तूफान में जाकर तो नहीं छोड़ देंगे ?—

आज हृदय फिर विचलित हो उठा है।

“बोलो पद्मा ! मैं हाँ और ना में उत्तर चाहता हूँ।” मैं अपनी स्वतंत्रता के साथ तुम्हारी स्वतंत्रता को भी समाप्त कर देना चाहता हूँ।” गम्भीरतापूर्वक विनोद ने कहा। आज वह प्रस्तर-गम्भीर था।

पद्मा कभी भी विनोद को ना में उत्तर नहीं दे पाई थी। विनोद को वह प्रेम करती थी, इस बात को कहने में वह अपने पति के सामने भी नहीं झुकी थी।

पंकज हृदय थाम कर रह गया था एक दिन। आँखों से आँसू बरसा

कर रह गया था एक दिन । उसका जीवन-स्वप्न पद्मा के इसी बार से खंडित हुआ था ।

‘हां’ निकल गया पद्मा के मुख से । विनोद नाच उठा । “अभी, इसी समय...चलो पद्मा हम बम्बई चल रहे हैं । पन्द्रह दिन में लौट कर आयेगे ।”

तैय्यारी होने में अधिक देर नहीं लगी ।

“कार पर ही चलेंगे ।”

“नहीं ।”

“फिर ।”

“ट्रेन से, अकेले ही तो नहीं हैं । मिस्टर चटर्जी और मिस मेरी भी जा रहे हैं ।”

पद्मा दंग रह गई । आँखों का स्वप्न आँखों में ही घुल गया । पैर अपना स्थान नहीं छोड़ सके । पत्थर की मूर्ति की तरह पद्मा एक इंच भी न हिल सकी । उसने क्या सोच कर हाँ की थी । जीवन की वास्तविकता एक तफ़री का साधन बनना चाहती थी ।

“क्या विचारने लगी पद्मा ?” विनोद ने पूछा ।

“मैं नहीं जाऊँगी विनोद बाबू, आप जा सकते हैं ।” पद्मा की यह पहली ‘ना’ थी विनोद के लिये और विनोद जड़वत खड़ा रह गया ।

“तुम मेरा दिल तोड़ रही हो पद्मा !” विनोद ने कहा

“कुछ भी सही, परन्तु मैं नहीं जा रही हूँ, इतना निश्चय है । आप जा सकते हैं ।” पद्मा की आँखें डबडबा आईं । उसे अब निश्चय हो गया कि जीवन में उसका कोई नहीं है । वह अकेली है और विनोद उसके जीवन से खिलवाड़ करना चाहता है ।

विनोद बाबू पद्मा को एक मजे की सामग्री समझते हैं । चार दिन की चहल-पहल समझते हैं । मेमों का ड्रुप्लिकेट समझते हैं । औरों की कमी पद्मा से पूरी करना चाहते हैं । संक्षेप में अपने विषय में यही धारणा बनी पद्मा की ।

वास्तव में पुरानी चीजें विनोद बाबू को पसंद नहीं आतीं। फिर भी नई न मिलने पर पुरानी का तिरस्कार करना भी वह नहीं चाहते। अवसर पड़ने पर प्रेम का प्रदर्शन करना भी खूब जानते हैं। जरूरत पड़ने पर आँखों से सहानुभूति के दो-चार आँसू गिराने में भी देर नहीं लगती। अभिनयकला के दक्ष कलाकार विनोद इसी प्रकार जीवन-अभिनय में गुलछरें उड़ा रहे हैं, मौजें ले रहे हैं जवानी की।

परन्तु आज के आँसुओं से भी पद्मा का दिल न पिघला।

अपना-सा मुँह लेकर विनोद बाबू लौट आये। किसी भी नई जगह से इस प्रकार लौटते हुए शायद विनोद बाबू को लज्जा न आती, परन्तु पद्मा के मकान से यों जाते हुए वह ज़मीन में गड़े जा रहे थे। पैरों के जूते इतने भारी हो गये थे कि पैर बैठे जा रहे थे, आगे बढ़ना कठिन हो रहा था। कई-कई मन के हो गये थे उसके पैर।

एक बार फिर साहस करके पद्मा के सामने पहुँचा और दुबारा साथ चलने के लिए विनय की।

“नहीं चलोगी पद्मा। मैं अन्तिम बार पूछने के लिए आया हूँ।” इतना कहते हुए उसकी आँखों से आँसू टपक रहे थे। आँखें बार-बार मींच कर विनोद बाबू इस प्रकार खोल रहे थे कि मानो किसी अथाह पीड़ा का अनुभव कर रहे हैं और पद्मा की ‘ना’ ने मानो उसका जीवन-स्वप्न ही तोड़ डाला।

“नहीं।” कहकर पद्मा कोच पर नीचे मुँह करके रोने लगी।

विनोद बाबू चले आये। आगे कुछ कहने का साहस उनमें नहीं था।

नौकर ने कमरे के बाहर से ही कहा, “आपका एक पत्र आया है कहिये तो अन्दर ले आऊँ।”

पद्मा ने सँभल कर कहा, “ले आओ।”

पत्र काँपते हुए हाथों से खोला। पहिले यही देखा कि किसके पास से आया है। लोकनगर से आया हुआ पत्र पंकज का न होकर ललिता का था।

पढ़ना शुरू कर दिया । पत्र इस प्रकार था ।

“मेरी बड़ी बहिन पद्मा देवी !

सादर, सस्नेह नमस्कार !

तुम शायद समझती होगी कि मैं तुम्हारे मार्ग में काँटा बनकर आई हूँ, ऐसी कुछ बात नहीं है बहिन ! मैं इनको प्रेम करती हूँ, इसे मैं नहीं छुपा सकती । वह भी तुमसे तंग आकर मुझ पर दया की दृष्टि रखने लगे हैं यह भी बात स्पष्ट ही है ।

मैं तुम्हारा दिल नहीं तोड़ना चाहती बहिन ! तुम्हारी वस्तु पर अधिकार नहीं करना चाहती । तुम्हारा धन तुम्हारा है और वह तुम्हारा ही रहेगा ।

मैं तो केवल तुमसे भिक्षा माँगती हूँ । यदि तुम दे सको तो ! तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कभी कुछ नहीं हो सकेगा पद्मा ! ललिता का यदि तुम्हें थोड़ा भी विश्वास हो सकता है तो तुम चली आओ । मैं इनके चरणों में साथ ही बड़ी बहिन के चरणों में थोड़ा-सा स्थान चाहती हूँ, दोनों की सेवा करने के लिये । यह स्थान देना तुम्हारी स्वतंत्र अनुमति पर निर्भर है ।

आज पाँच दिन से वह बीमार हैं । कुछ नहीं खाया है । कई बार तुम्हारी याद की है । घर में और न मेरे पास एक भी पैसा है कि डाक्टर को बुला सकूँ ।

आखिर यह तुम्हारे स्वामी हैं । दया करो बहिन ! एक बार आओ और अपने जीवन-धन की रक्षा कर लो ।

अधिक क्या लिखूँ ?

पत्र को तार समझना ।

तुम्हारी—ललिता ।”

पद्मा का अभिमान पूर्ण सिर गर्व से कितना ऊँचा उठ गया । पत्र का पहला भाग पढ़कर कुछ सहानुभूति अवश्य हुई, परन्तु अन्तिम भाग ने पासा ही पलट दिया । विचार-धारा ही बदल दी ।

‘मैं खूब समझती हूँ इन चालों को ।

आज पैसे के लिये मुझे याद किया है । बड़ी बहिन बनाया है ।—

कदापि नहीं, मैं ललिता...तुझे नहीं छोड़ सकती । तू मेरे जीवन की...।

मैं नहीं जाना चाहती । नहीं, मैं नहीं जाऊँगी । मेरा वहाँ पर कोई नहीं है ।—

सब दुनियाँ मतलब की है । आज मतलब के लिये ही मुझे याद किया गया है ।—

मुझे दुनियाँ में किसी का विश्वास नहीं ।

अनेक विचार आये और चले गये । पद्मा भूल गई विचारों पर ।

पद्मा के पिता जी ने अन्दर आकर पूछा, “बेटी पत्र तो लोकनगर से आया मालूम होता है ।”

“जी पिताजी ।”

“क्या कोई खास बात है ?” उन्होंने फिर पूछा ।

“कोई खास बात नहीं है ।” गम्भीरतापूर्वक पद्मा ने कहा ।

“क्या शादी का पंक्ज ने निश्चय ही कर लिया बेटी ? एक बार तুম भी हो आओ । शायद तुम्हारे ही कहने से मान जाये ।” समझाने के स्वर में पिताजी ने कहा ।

“मुझे ज़रूरत नहीं है पिताजी ! दुनियाँ में सभी का विवाह नहीं होता है । मेरा विवाह हुआ न हुआ बराबर ही है । पता नहीं आपको विवाह करने की ऐसी क्या जल्दी थी कि दो ही वर्ष के बच्चे की गर्दन विवाह के फंदे में फँस दी ।

“मैं इस विषय में कुछ नहीं कहना चाहती । प्रत्येक मनुष्य अपना काम करने के लिये स्वतन्त्र है ।”

“क्या कह रही हो बेटी ! पंक्ज का पिता मेरा मित्र था । कोई मामूली आदमी नहीं था वह । और आज भी पंक्ज सँभल जाये तो सभी कुछ है । भाग्य की बात है बेटी ।”

“अपनी बातों को भाग्य पर टालते हो पिताजी !” एक लम्बी साँस खींचकर पद्मा ने कहा ।

“अच्छा तो तू एक बार लोकनगर यदि हो आये तो तेरी क्या हानि है ? पति के सामने जाने से सिर नीचा नहीं होता । आत्म-सम्मान को ठेस नहीं लगती ।”

“आपके विचार से पिताजी ! दुनियाँ में सबके विचार अलग-अलग होते हैं । मैं लोकनगर नहीं जाना चाहती ।

फिर वह मुझे पत्र भी नहीं लिखता...” कहती-कहती पद्मा रुक गई । भावुकता से उसके नेत्रों में आँसू भर-भर आये ।

“फिर किसका पत्र है यह ?” उत्सुकतापूर्वक पद्मा के पिता ने पूछा ।

“उसी ललिता का जिसके साथ विवाह करने की तैयारियाँ हो रही हैं । पिताजी पूरी चालबाजी की बातें हैं । अभी पन्द्रह दिन बाद विवाह होने जा रहा है । सभी कुछ निश्चय हो चुका है और खत में लिखा है कि बीमार हैं । जल्दी आओ रुपये की आवश्यकता है ।

यह सब धोखा नहीं तो क्या है ? हमारा उनकी शादी के लिए खर्च हो ? उनकी दूसरी शादी के लिये ? बहुत बुद्धिमान हैं । मैं भी आखिर आदमियों में रही हूँ, जानवरों में नहीं । मुझे बहकाकर...” पद्मा के क्रोध ने उसे अधिक नहीं बोलने दिया । वह बलबलाकर चुप हो गई । उसकी आँखों से इस समय आग बरस रही थी ।

“ऐसी बात नहीं होगी पद्मा ! पंकज धोखेबाज नहीं है । अगर वह बीमार न होता तो स्वयं ही पत्र लिखता ।” सरलतापूर्वक पिता ने कहा ।

आप रहने दीजिये पिताजी ! मुझे किसी की खुशामद करने की आवश्यकता नहीं ।

उनके साथ मेरा जीवन नहीं कट सकता । यदि विवाह ही करना

होगा तो .. नहीं नहीं किसी से भी नहीं, कभी भी नहीं... मुझे विवाह की कोई आवश्यकता नहीं ।

मैं किसी के बंधन में नहीं रहना चाहती !” सीना उभार कर एक लम्बा साँस लेकर पद्मा ने कहा ।

“तू बावली है बेटी ! भला कहीं ऐसा भी होता है ? जा, लोकनगर चली जा और ..” ।”

“आप क्यों व्यर्थ के लिये मुझे परेशान कर रहे हैं पिताजी ? मैं नहीं जाऊँगी, नहीं जाऊँगी ! मैं उनके पत्र का उत्तर भी नहीं देना चाहती ।” दृढ़तापूर्वक पद्मा ने कहा ।

पिता बाहर चले गये । पद्मा अकेली बैठी रह गई । क्रोध से अभी तक आँखें अंगारे हो रही थीं । मन में सोचने लगी, ‘चाहते होंगे मेरे जेवर नई बहू को चढ़ायें, इधर-उधर के खर्च के लिये रुपया भी मुझी से ऐंठ लें । खूब मज़ाक रहा यह भी । जानो मैं कुछ जानती ही नहीं, कुछ पहिचानती ही नहीं ।

मुझे आवश्यकता ही क्या है वहाँ जाने की ? मेरा जीवन उनके ऊपर आश्रित नहीं । क्या नहीं है मेरे पास ? वह मेरा मुँह ताक सकते हैं, मुझे आवश्यकता नहीं कि उनकी ओर देखूँ भी ।—

ललिता .. ललिता सर्पणी कहीं की । इसका फन मुझे कुचलना ही होगा । अवश्य कुचलना होगा—

इन्हीं विचारों में मग्न थी कि मिस्टर चटर्जी सामने आकर खड़े हो गये ।

“ओह मिस पद्मा ! कैसा मिजाज है ? तुम भी बिल्कुल ही अजीब हो । इतना अंधेरा हो गया और आपने प्रकाश की भी आवश्यकता नहीं समझी ।” बत्ती जलाते हुए कहा । “कुछ शहर की भी खबर है ?”

“ओह आप ! मिस्टर चटर्जी ! कहिये, कहिये मैंने तो कोई बात नहीं सुनी । क्या कोई खास बात है ?” पद्मा ने पूछा ।

“क्यों नहीं ? आज न्यू थियेटर्स की नई फिल्म रिलीज हो रही है चित्रा-हाउस में ।”

“परन्तु मैं सिनेमा नहीं जाऊँगी । मेरी तबियत आज ठीक नहीं है !” पद्मा ने स्पष्ट उत्तर दिया ।

“क्या खूब ? याचकों को निराश करना आपने कब से सीख लिया ? मैं तो बड़ी आशा...”

“निराश विराश की बात नहीं । मेरी तबियत आज बिल्कुल खराब है । मैं नहीं जा सकूँगी । बिल्कुल नहीं ।” इसी दृढ़ता के साथ पद्मा ने कहा ।

“तबियत तो सिनेमा देखने से ठीक हो जायेगी । चलिये ना ! देखिये वहाँ पर विनोद बाबू और मिस मेरी भी मिलेंगे ।”

“जी नहीं । मुझे किसी से मिलने की इच्छा नहीं है । आपको देर हो रही है । कहिये तो कार में आपको पहुँचा दूँ सिनेमा तक ।”

“धैर्य ! सो तो कार मेरे पास भी है ।” चटर्जी ने कहा ।

“माफ़ कीजिये ! आज के कष्ट के लिये क्षमा चाहती हूँ ।”

“फिर मिलना नहीं हो सकेगा...”

“अच्छा आप बम्बई जा रहे हैं । परन्तु पन्द्रह दिन में लौट तो आइयेगा न !”

“कौन जाने ?” गर्दन घुमा कर चटर्जी बोले ।

“क्यों ?”

“मेरी का विलायत जाने का विचार है । मुझी को पहुँचाने तो विनोद बाबू भी जा रहे हैं । इसीलिए आज आपके पास आया था कि अन्तिम बार भेंट कर चलूँ ।”

“अच्छा गुड बाई ।” कहकर मिस्टर चटर्जी चलने को ही ये कि पद्मा ने सोचा, ‘यह आज जा रहे हैं । पता नहीं कब फिर लौटेंगे । न

जाने कितनी आशा लेकर आये होंगे ? चलो सिनेमा जाने से शायद मेरा जी भी कुछ बदल जाये । यहाँ तबियत भी तो नहीं लग रही है ।’

“हाँ तो आप निश्चित रूप से जा रहे हैं ?”

“अभी तक तो निश्चित ही है ।”

“अच्छा चलिए मैं भी चलती हूँ सिनेमा ।”

“ओह गुड ! गुड ! आप कितनी अच्छी हैं पद्मादेवी ! कितनी सुन्दर हो तुम ? कितनी मोहक हो तुम ? कितनी प्यारी हो तुम ? कितनी मीठी हो तुम ?” बस न जाने क्या-क्या पद्मा की तारीफ में कहते ही चले गये मिस्टर चटर्जी ।

“बस रहने दो इन बातों को । मुझसे सुन्दर आपके लिये न जाने कितनी हैं ?” पद्मा ने कहा ।

“यह बातें न किया करो बस तुम पद्मा ! मैंने कितनी बार तुमसे कहा है....।”

“बस-बस रहने दो । चलो देर हो रही है ।”

दोनों कार में जाकर बैठ गये ।

“मैं आज कह कर ही रहूँगा पद्मा देवी ! देखो तुम मेरे हृदय को नहीं पहिचानतीं । तुम मेरे और विनोद—दोनों के साथ नहीं रह सकतीं । एक को तुम्हें छोड़ना ही होगा ।”

“क्या कह रहे है आप ? आज विलायत जा रहे हैं । वहाँ पर न जाने कितनी मेमें आपको मिलेंगी ?”

“नहीं पद्मा . ।”

“अच्छा रहने भी दो....।”

“समझ गया, तुम विनोद को नहीं छोड़ सकतीं । वह तुम्हारे जीवन में . ।”

“मैं मना कर चुकी हूँ कि विनोद का नाम मत लो मेरे सामने....।”

कह ही रही थी कि सिनेमा आ गया । मोटर रुक गई । सामने ही विनोद बाबू और मिस मेरी पहिले खड़े हुए थे ।

मिस्टर चटर्जी टिकट वाली खिड़की की ओर बढ़े ही थे कि विनोद बोल उठा, “हैं, हैं क्या कर रहे हो ? क्या कर रहे हो ! टिकट तो मैं ले चुका ।”

“चलो फिर अन्दर चलें ।”

“आप भी आखिर चली ही आई पद्मा देवी ?” एक गहरी साँस लेकर विनोद ने कहा ।

“जी !” सिर नीचा-सा करके पद्मा ने उत्तर दिया ।

“अच्छा ही किया आपने ।” और चारों हाल में सिनेमा देखने चले गये । आज ही रिलीज हो रही थी यह पिक्चर । बड़ी भीड़भाड़ थी । कालेज के छोकरे-छोकरियों से हॉल भरा-पुरा था और अन्य सिनेमा के शौकीनों की भी कमी नहीं थी ।

: ७ :

“तुमने पत्र ही आखिर क्यों लिखा था ललिता ? मुझे उसके रुपयों की आवश्यकता नहीं । मुझे उसकी भी कोई आवश्यकता नहीं । तुम नहीं जान सकीं ललिता अभी पद्मा को ।”

“वह आयेगी अवश्य पंकज ! मेरा मन कहता है कि वह अवश्य आयेंगी ।” ललिता ने गम्भीरतापूर्वक कहा ।

“वह आयेंगी और अवश्य आयेंगी परन्तु मेरे मरने के पश्चात् ।”

“यह क्या कह रहे हैं आप ?” ललिता अधीर हो उठीं । उसका तमाम शरीर काँप उठा । नेत्रों में आँसू डबडबा आये ।

“अरे ! बावली !” ललिता का हाथ अपनी ओर खींचते हुए पंकज ने कहा । “यह तो मैंने योंही क्रोध में कह दिया । मैं अब बिल्कुल ठीक होता जा रहा हूँ ।” ललिता को धैर्य बँधाते हुए पंकज ने कहा ।

“जब तुम मेरे पास हो तो मौत की भला क्या सामर्थ्य जो मेरा कुछ कर सके ।” पंकज फिर बोला ।

ललिता को धैर्य नहीं बंधा । उसका हृदय बराबर काँपता ही रहा । “आखिर ऐसी बात पंकज के मुखसे निकली ही क्यों? हे भगवान्! मेरा इस संसार में कौन है ? मेरा जीवन नष्ट न कर देना भगवान्! मैं निराश्रिता हो जाऊँगी, मैं कहाँ जाऊँगी, किधर जाऊँगी ।” ललिता के तमाम बदन में सिहरन हो रही थी । उसकी आँखों के सामने अंधकार का बादल छाता चला जा रहा था । उसे ऐसा लग रहा था मानो उसके अपने शरीर की भी शक्ति क्षीण होने लगी थी ।

“तू बड़ी बावली है ललिता ! देख, कल जो हकीमजी दवा दे गये थे वह बहुत अच्छी थी । उसने मेरा आधा बुखार दूर कर दिया । मुश्कराने का प्रयास करते हुए पंकज ने पीड़ा को दबाते हुए कहा ।

“परन्तु आज पन्द्रह दिन हो गये और आपका बुखार नहीं छूटा । आप तो यों ही कहते रहते हैं कि अब मेरी तबियत ठीक है । जानो तबियत कभी खराब ही नहीं हुई । देह में तनिक भी शक्ति नहीं रही और कहते हो कि तबियत ठीक होती जा रही है ।” भयातुर ललिता ने कहा । उसकी आँखों में आँसू थे और वह किसी भावी आशंका से काँप रही थी । फिर बोली “लेकिन अब आप बात न कीजियेगा । सो जाइये । देखिये नई दवा से कल आपका बुखार अवश्य उतर जायेगा ।”

पंकज को न जाने क्यों आज यह विश्वास हो चुका था कि यह बुखार नहीं उतरेगा । अनमने भाव से उसने कहा “हाँ हाँ, सो जाऊँगा । लेकिन तू कहीं भी यहाँ से मुझे अकेला छोड़ कर जाना मत ।”

“ऐसी बातें क्यों कह रहे हैं आप ? चुप होकर सो जाइये ।” ललिता ने फिर कहा ।

पंकज मुँह ढक कर सोने का बहाना करने लगा । ललिता बैठी रही और पंकज मुँह ढाँके लेटा रहा । थोड़ी देर बाद पंकज ने फिर मुँह उघाड़ लिया । उसे नींद नहीं आ रही थी ।

“आप किसी की बात नहीं सुनते। यही तो खराबी है। उस दिन यदि गंगा में न नहाते तो शायद यह बुखार इतना न बढ़ता।” गम्भीरता पूर्वक ललिता ने कहा।

ललिता की इस बात को सुनकर पंकज को मुँह ढक कर लेटना पड़ा। कुछ देर फिर चुप-चाप पड़ा रहा परन्तु नींद बिलकुल नहीं आई। पंकज ने फिर मुँह उघाड़ लिया, “ललिता तुम जाग रही हो?”

“क्यों क्या बात है?”

“क्या मुझसे भी पूछने की आवश्यकता है आपको?”

“अच्छा तो कलम दवात ले आओ।”

“यह काम क्या सुबह नहीं हो सकता। इस समय तो यदि आप सो जाते तो ज्यादा अच्छा होता। हकीमजी ने नई दवा दी है। सुबह मुझसे कहा था कि कल तक जरूर बुखार उतर जायेगा। यह बदपरेहजी ठीक नहीं होती।” ललिता ने गिड़गिड़ा कर कहा।

लेकिन पंकज न सो सका।

“ललिता! नींद नहीं आ रही है मुझे। इस समय तुम जो मैं कह रहा हूँ उसे कर दो। तुम्हारा उपकार कभी नहीं भूलूँगा।”

“यह क्या कहने लगे आप? मैं अभी कलम दवात ले आती हूँ।”

ललिता कागज़, कलम और दवात ले आई। “कहिये क्या लिखना है?”

“एक पत्र पद्मा को मेरी ओर से आने को लिख दो। लिखना फौरन चली आये यदि वह मुझे देखना चाहती हो तो।”

ललिता के हृदय को एक ठेस लगी, परन्तु उसने मुख से कुछ कहा नहीं। पत्र लिख दिया और प्रातःकाल वह चला भी गया। पद्मा को मिला भी जरूर होगा परन्तु आई नहीं।

कई दिन हो गये। पंकज की हालत अच्छी होने के बजाय बराबर खराब ही होती जा रही थी। ललिता की दिन-रात की सेवा निष्फल

सिद्ध हुई। एक दिन पंकज गम्भीर होकर बैठ गया। ललिता को सामने बुलाकर बोला, ललिता आओ मेरे पास बैठ जाओ।”

ललिता बैठ गई।

“देखो ललिता ! मैंने तुम्हारा जीवन नष्ट कर दिया। अब मुझे देखने लगा है कि मैं जीवन की आशा व्यर्थ कर रहा था।”

“नहीं नहीं मैं ये बातें नहीं सुनना चाहती। आप आराम से लेट जाइये।” ललिता ने रोते हुए कहा।

“नहीं ललिता अब छुपाने से काम नहीं चलेगा। हकीमजी ने साफ़-साफ़ कह दिया है। मेरे जीवन की अब कोई आशा नहीं है। और आज से हमारे विवाह के सात दिन हैं। यदि जीवित रहा तो विवाह तो...”

“ललिता का विवाह तो कभी का हो चुका। आप भूल रहे हैं नाथ ! मैं तो आपको माला पहिना चुकी। यह जीवन आपके चरणों में डाल चुकी। अब रस्म अदा करने की कोई आवश्यकता नहीं है।” गम्भीरता पूर्वक दृढ़ता के साथ ललिता ने कहा।

“नहीं ललिता ! यदि मैं तब तक रहा तो वह तो होगी ही।”

“जैसी आपकी इच्छा।”

“मैं तुम्हारे लिये केवल अपना प्यार अपनी याद के साथ छोड़कर जा रहा हूँ ललिता।”

ललिता के कान बहरे हो चुके थे। वह सुनना नहीं चाहती थी और सुन भी नहीं पा रही थी। उसका साँस घुट रहा था। उसकी आँखों के सम्मुख अन्धकार था।

धीरे से मकान से बाहर हो गई। पंकज अपनी रजाई में मुँह ढककर लेट गया।

पद्मा से पंकज एक बार मिलना चाहता था। वह अपने को दोषी समझता था, परन्तु पद्मा से कम। फिर भी वह सभी दोष अपने सिर लेने को तैयार था। शायद यदि उसमें शक्ति होती तो वह स्वयं कलकत्ते जाता, परन्तु अब यह विचार व्यर्थ था।

पद्मा का काफ़ी इन्तज़ार किया पंकज ने परन्तु वह न आई ।

ललिता आज अपने कमरे में बैठ कर जी खोलकर रोई । कितनी देर तक रोती रही, यह वह नहीं जानती । आँखें खुलीं तो रात्रि का अन्धकार था । घर से सीधी पंकज के घर की ओर निकल पड़ी । पंकज के मकान में पहुँची तो वह तकिये का सहारा लेकर बैठा था । ललिता को देख कर बोला, “अब मैं ठीक हो गया ललिता ।”

“मैं कैसे विश्वास करूँ भला ?”

“विश्वास, अभी चार-पाँच दिनों में जब मैं चलने फिरने लगूँगा तो हो जायेगा ।” मुस्कराते हुए पंकज ने कहा ।

“कल तुमने साबूदाना क्यों नहीं खाया ?”

“मीठा खाने को तबियत नहीं होती ललिता !”

“आज मूँग की दाल बना दूँ ?”

“अब क्यों तकलीफ़ करो ? मुझे भूख नहीं है ।”

“भूख तो आपको कभी लगती ही नहीं !” मुँह बनाकर ललिता ने कहा ।

“अच्छा बना लाओ मुझे भूख लगी है ।” मुस्कराते हुए पंकज ने कहा ।

“सच ।” उत्सुकता पूर्वक ललिता ने पूछा ।

“हाँ हाँ, जल्दी बनाकर लाओ । मुझे बहुत ज़ोर से भूख लगी है ।”

“आप हँसी करने लगे ।” लजाकर ललिता बोली ।

“भूख में भी कहीं हँसी होती है भला ।”

एक मुस्कराहट ललिता के मुख पर भी दौड़ गई । जल्दी से जाकर ललिता ने आँच पर पतीली चढ़ा दी और फिर आकर पंकज के पास चुपचाप बैठ गई । वह धीरे-धीरे पंकज के बालों में उँगलियाँ डाल कर उन्हें किरोल रही थी ।

“आज तुमने पिताजी को फूल नहीं पहुँचाये ललिता !”

“नहीं ।”

“क्यों नहीं पहुंचाये भला ? पूजा का काम तो पहिले करना चाहिये था ललिता !” पंकज ने सरलता पूर्वक कहा ।

“यहाँ भी तो पूजा ही हो रही है ।” सरल गम्भीरता पूर्वक ललिता बोली ।

पंकज चुप हो गया । ललिता पतीली की खिचड़ी देखने चली गई । पंकज के नेत्रों से दो आँसू ढुलक गये । हृदय भारी-सा हो गया, ‘भगवान् मेरे साथ कहीं ललिता की नाव को भी मत डुवा देना । मैंने भला आपका क्या अपराध किया है भगवन् ? इतने निष्ठुर क्यों हो रहे हो तुम ? मुझ पर यदि दया नहीं करते, तो कम से कम बेचारी ललिता का तो ख्याल करो । मैं तुम्हारी पूजा के लिए एक मन्दिर बनवाऊँगा भगवन् ! मेरे पापों के साथ कहीं इस बेचारी का भी सर्वनाश न कर डालना ।

आज पन्द्रह दिन हो गये और बुखार उतरने का नाम नहीं लेता । अपने को सँभालने का प्रयत्न करता हूँ, परन्तु सँभाल नहीं पाता ।

तुम्हारे ही हाथों में है भगवान् यह नौका ।

ललिता खिचड़ी लेकर चली आई । तबियत न होते हुए भी पंकज ने थोड़ी-सी खा ली । वह ललिता को नाखुश नहीं कर सकता था । “अच्छा अब तुम पूजा के फूल दे आओ ललिता ! फिर पिताजी के खाने का प्रबन्ध करके आना बस ।”

“फूल मैं दे आई ।”

“कब ?”

“थोड़ी देर पहिले आपकी आँखें कुछ देर को भँपक गई थीं । उसी समय मैं जाकर दे आई ।”

“तब तो फूल रात्रि में ही चुन लिये होंगे क्यों ? तू बड़ी बावली है ललिता ! मेरी रानी ! मेरी ललिता ।”

“रात्रि में चाँदनी रहती है । कोई डर की बात नहीं है ।” ललिता ने कहा ।

“ठीक है लेकिन फिर भी बाग में कीड़े-काँटे का भय रहता ही है । अच्छा अब मेरी तबियत ठीक है, तुम पिताजी का खाना बना आओ ।”

“अच्छी बात ।” कहकर ललिता धीरे से हकीमजी के पास से होती हुई घर पहुँच गई ।

रास्ते में हकीमजी से पूछा, “कब तक अच्छे हो जायेंगे ?”

“दवा तो बहुत अच्छी दे रहा हूँ बेटी, परन्तु बुखार दूटने को ही नहीं कहता । बड़ा डर रहा हूँ कि कहीं मियादी न हो जाये ।”

“क्या आप भी डरने लगे हकीमजी ?” ललिता की आँखों में आँसू आ गये । वह वहीं उनकी चौखट पर बैठकर रोने लगी ।

“घबराने की बात नहीं है बेटी ! भगवान् करेंगे तो शीघ्र ही अच्छा हो जायेगा पंकज । आज मैं दवा को बदलने का विचार कर रहा हूँ । यह दवा रात भर में अपना असर करती है । परमात्मा ने चाहा तो कल बुखार नहीं रहेगा । बुखार जाने पर कमजोरी तो रफ़ता-रफ़ता चली ही जायेगी ।” हकीमजी बोले ।

“किसी प्रकार इस बार बुखार उतार दीजिये हकीमजी ! एक बार अच्छा कर दीजिये ।”

“अपनी जैसी पूरी कोशिश करूँगा बेटी ! आगे भगवान् की इच्छा । मनुष्य का काम तो कोशिश करने का है ।”

एक लम्बी साँस लेकर ललिता घर चली आई । बहुत शीघ्रता से खाना बना लिया । संध्या हो गई । आज हकीमजी ने दवा बदली है । तुलशा की चाय के साथ पुड़िया खिला दी ।

“अब आप मुँह ढँककर सो जाइये ।”

“सो जाऊँगा ललिता ! लेकिन तुम मेरे पास ही रहना ।” ललिता का हाथ अपने हाथ में लेते हुए पंकज ने कहा ।

: ८ :

पद्मा ने अब दोस्तों में बैठना बिल्कुल बन्द कर दिया । कई बार विनोदबाबू आये, परन्तु निराश ही उन्हें लौटना पड़ा ।

चैटर्जी तो वाकई विलायत चले गये मिस मेरी को साथ लेकर ।

आज फिर एक बार विनोद बाबू ने साहस किया आने का । दबे पाँव आये और पद्मा के कमरे में दाखिल हो गये ।

“ओह ! विनोदबाबू ! कहिये कैसे मिजाज हैं ? बहुत दिनों में दर्शन हुए ” तपाक के साथ पद्मा ने स्वागत किया ।

“मैंने अब एक काम शुरू कर दिया है पद्मादेवी ! बस उसमें इतना उलझ गया हूँ कि फुर्सत ही नहीं होती ।”

“अच्छा ! तो अब आपकी स्वतंत्रता...”

“रहने दो पद्मा उस बात को । मैंने एक मोटरों की दूकान कर ली है । उसी के कार-व्योहार में उलझा रहता हूँ ।”

“चलिये अच्छा है ।”

“आप तो शायद मुझे भूल ही गई हैं ।” जरा दाँत से होठ काटकर विनोद ने कहा ।

“यह भला कैसे हो सकता है विनोदबाबू ! हम तुम साथ-साथ पढ़े हैं । कितने दिन साथ-साथ रहे, फिर भला भूल किस प्रकार सकती हूँ ?” मुस्कराकर पद्मा ने कहा ।

विनोद का मन फिर उछलने लगा । सोचा कि शायद आज फिर मौका मिले गहरे पानी में घुसने का । फिर चिड़िया जाल में फँसना चाहती है ।

एक दम गम्भीर हो गये, “जब दिन फिरते हैं तो अपने भी पराये हो जाते हैं पद्मा !” जरा मुड़कर सिर खुजलाते हुए विनोदबाबू ने कहा ।

“क्यों ? आखिर ऐसी क्या बात है ? दिन फिरने की तो आपने कोई बात नहीं की । नया कारबार किया है सो अच्छी ही चीज है ।”

“तुम्हीं सोच लो भला, मुझे मोटरों की दूकान करने की क्या आवश्यकता थी ?” गम्भीर मुद्रा बनाकर विनोदबाबू ने कहा ।

“क्यों ? काम तो कुछ बुरा नहीं है । फिर काम तो कोई भी बुरा नहीं होता ।” गम्भीरता पूर्वक बिना मुस्कराये पद्मा ने कहा ।

“यही बात है ।” एक लम्बी साँस खींचकर विनोद ने नीचा मुँह करके कहा । वह अब नहीं समझ पा रहा था कि बात को आगे किस प्रकार बढ़ाये ?

“क्यों ऐसी क्या बात है ?” ललिता ने मुस्करा कर पूछा ।

“कुछ नहीं । अच्छा जाता हूँ पद्मादेवी ।” सोचा था कि पद्मा ठहरने के लिये कहेगी । इसीलिए जाने को कहा, परन्तु वहाँ मामला ही दूसरा निकला । पद्मा शायद जो बातें कर रही थी वे भी भार स्वरूप ही उसके सिर पर आकर लेट गई थीं ।

“अच्छी बात है ।

विनोद आश्चर्य में रह गया । कुछ भी नहीं पूछा । यह भी नहीं कि आखिर क्यों आये थे और क्यों चल दिये । आज इतने दिन में आये और फिर कब आइयेगा ?—विनोद के मन की आशा मन में ही घुल कर समाप्त हो गई ।

हृदय के सारे स्वप्न धुलकर पानी हो गये । दरवाजे तक विनोद गया और फिर सिर को खुजलाता हुआ लौट आया ।

“हाँ जिस काम से आया था वह तो मैं भूल ही गया आपसे कहना ।” जरा अदा के साथ बोला ।

“अवश्य कहिये, अवश्य कहिये वह बात भी । मैं समझती थी कि आप केवल मिलने ही आये हैं ।” पद्मा ने कहा ।

“हाँ तो मैंने जो मोटरों की दूकान की है उसकी आज संध्या को ओपनिंग सेरीमनी (उद्घाटन) होगी ।”

“बड़ी खुशी की बात है, बड़ी प्रसन्नता की बात है।” पद्मा ने मुस्कराते हुए कहा।

इस खुशी को देखकर विनोद की आशा ने एक बार फिर पर फैलाये और उसने कह ही दिया, “हाँ और यह सेरीमनी आपके ही हाथों होगी।”

“क्षमा कीजिये विनोद बाबू ! जो आदर (सम्मान) आपने मुझे दिया है उसके लिए मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ परन्तु मैंने आजकल घर से बाहर जाना छोड़ दिया है। यहाँ तक कि, आपको ताज्जुब होगा, मैं सिनेमा तक भी नहीं जाती।

देखिये, आप ही विचारिये कि मुझे सिनेमा का कितना शौक था ? आप तो जानते ही हैं। यदि कोई अनजान हो तो उससे कुछ कहा भी जाये।” पद्मा ने उसी स्थिरता के साथ कहा।

“जी यह तो सब जानता हूँ लेकिन...”

“लेकिन की कोई बात नहीं विनोद बाबू ! यदि मैं आपकी सेवा करने योग्य होती तो भला क्या इंकार था ? हाँ देखिये क्षमा कीजिए बस !

और हाँ...कुछ नहीं बस क्षमा कीजिए।

विनोद अपने को ही अभी तक तीसमारखाँ समझता था, परन्तु आज पद्मा ने उसे सचमुच ही चकरा दिया। वह विश्वास नहीं कर सका कि जो पद्मा इस समय उसके सामने बैठी थी क्या वह वही थी जो कभी कठपुतली के समान उसके हाथों में नाची थी।

एक शब्द भी अब जबान से निकालने की सामर्थ्य उसमें नहीं थी। सीधा दरवाजे की ओर हो लिया। इस बार फिर कर भी विनोद ने पीछे नहीं देखा।

“अच्छा आप जा रहे हैं।” पद्मा ने कहा।

“जी ! अब आप....।”

“अच्छा....अच्छा...हाँ क्षमा कीजिये विनोद बाबू ! आपको कष्ट

तो ज़रूर हुआ ।” यह व्यंग नहीं था, अपमान नहीं था, स्वभाव बनता जा रहा था पद्मा का । किती नए आदमी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती थी इस पद्मा से मिलकर परन्तु परिचितों के लिए वह अवश्य विचित्र बात थी । उनके लिए तो पद्मा में एक अजीबोगरीब परिवर्तन था ।

“जी नहीं । कष्ट इसमें क्या है ?” अपनी लज्जा को छुपाते हुए विनोद बाबू ने कहा ।

मुँह लटकाये हुए विनोद बाबू चले गये । कोठी के दरवाजे से एक बार घूमकर देखा कि शायद पद्मा अपने कमरे के दरवाजे या खिड़की से झाँक रही हो, परन्तु वहाँ किसी का पता नहीं था । उनका ख्याल व्यर्थ था ।

पद्मा पहिले की तरह से ही कोच पर पड़ी रही । विनोद आया और चला गया । उसे मानो कुछ मालूम ही नहीं । बातें कीं परन्तु बहुत ही सूक्ष्म । पहिला ही अवसर था आज इस प्रकार की बातें करने का ।

मन में विचार आया, “क्या वे वाकई बीमार हैं ? ललिता उनके पास है ।

कहीं ललिता ने सम्पत्ति के लालच में कोई चीज़ न दे दी हो ?—

आखिर इतनी बीमारी का क्या कारण ? इतने शीघ्र, इतने बीमार यह नहीं हो सकता । असम्भव बात है, बिल्कुल असम्भव !—

परन्तु ललिता उन्हें प्यार करती है ।—

नहीं प्यार कोई चीज़ नहीं है । वे मेरे स्वामी हैं । मेरे हैं । विनोद बाबू ने मुझसे प्यार किया, चटर्जी ने प्यार किया, किसने नहीं किया ?— प्यार कोई चीज़ नहीं है । इसमें अवश्य ललिता का ही कुछ जाल है ।— यदि वे बीमार है...।—तब क्या वे बीमार नहीं हैं ?—नहीं, कदापि नहीं, मैं भी तो कोई चूर्ण की गोली नहीं कि यों ही मुँह में रख ली जाऊँगी । मुझे जाना ही चाहिए । मुझे जाना ही होगा ।”

अचानक पद्मा ने कुर्सी छोड़ दी और सीधी अपने पिता के कमरे में चली आई ।

“पिताजी मैं लोकनगर जा रही हूँ । मुझे अभी जाना है । इसी समय जाना है । मैं मोटर से जा रही हूँ ।”

मैंने तो पहिले ही कहा था । परन्तु देखो शीघ्रता नहीं करनी चाहिये । संध्या की गाड़ी से चली जाना । ठीक सुबह तुम्हें लोकनगर पहुँचा देगी ।”

“नहीं पिताजी ! मैं अभी जा रही हूँ । मैं कार पर चली जाऊँगी । रुकना अब असम्भव है मेरे लिये ।” व्यग्र भाव से पद्मा ने कहा ।

“रास्ता अच्छा नहीं है बेटी कार के लिये ।” पिता ने कहा ।

“कुछ भी सही ।” दृढ़ता पूर्वक पद्मा बोली ।

पद्मा कार पर कलकत्ते से रवाना होने को ही थी कि सहसा उसे ख्याल आया कि किसी डाक्टर को ले चलना चाहिये ।

फौरन कार सिविल सर्जन के बंगले की ओर मोड़ दी ।

“इसी समय चलना होगा क्या ?” डाक्टर ने पूछा ।

“इसी समय नहीं, अभी, फौरन । कार तैयार है । शीघ्रता कीजिए डाक्टर साहेब !” पद्मा ने भयभीत स्वर में कहा ।

“परन्तु मुझे कई मरीजों को देखने के लिये जाना है ।” डाक्टर ने कहा ।

“मैं आपको मालामाल कर दूँगी डाक्टर साहेब ! आप उन्हें बचा दीजिये ।”

कहने के बाद पद्मा को ध्यान आया कि वह क्या कह रही है ? यह उसने आखिर क्यों कहा ? अभी तो उसे यह भी पूर्ण विश्वास नहीं था कि वह बीमार हैं या नहीं ।—नहीं वे झूठ नहीं लिख सकते ।—उन्होंने सत्य ही लिखा है ।—

ललिता...ललिता...क्रोध से आँखें लाल हो गई ।

न जाने क्यों उसके मन में दृढ़ विचार हो गया कि पंकज की बीमारी में ललिता का हाथ है।

“आप देर क्यों कर रहे हैं डाक्टर साहेब ? मेरा सर्वनाश हो जायेगा। शीघ्रता कीजिये। मैं आपका घर भर दूँगी।” पद्मा ने गिड़-गिड़ाकर कहा।

“अच्छा एक घंटा आप ठहर जाइये, फिर मैं आपके साथ चलता हूँ। मैं एक मरीज को देख आऊँ। मुझे उससे फ्रीस लेनी है। फिर नहीं मिलेगी।”

“मैं आपको दुगनी फ्रीस दे दूँगी डाक्टर साहेब जल्दी करो।” पद्मा ने कहा।

“और वह मरीज।”

“तुम फ्रीस चाहते हो या मरीज !” पद्मा ने पूछा।

डाक्टर असमंजस में पड़ गया। पैसे का लालच डाक्टर साहेब को अधिक था। तुरत ही अपना वेग सँभाल लिया। कार बिजली की तरह तेजी से चल पड़ी।

“हैं, हैं क्या कर रही हैं आप ! कहीं इतनी तेज भी भला कार चलाई जाती है ?”

“बोलियेगा नहीं आप।” पद्मा ने दृढ़तापूर्वक कहा।

“कार उलट जायेगी, टकरा जायेगी। देखती नहीं हो कितनी खराब सड़क है और कार कितनी उछल रही है ?

“अरे ! अरे ? साठ मील...आप क्या गजब कर रही हैं ?”

“मैं कहती हूँ आप चुपचाप बैठे रहिये, एक शब्द भी बोलने की आवश्यकता नहीं। यदि बातों में ध्यान बटाओगे तो नुकसान हो जायेगा। मुझे बहुत जल्दी पहुँचना है।”

“देखो रात में कहीं एक्सीडेंट हो गया तो कोई पानी देने वाला भी न मिलेगा।” डाक्टर ने कहा।

“न सही ! मुझे वहाँ पहुँचना ही है।”

“जी...न सही...मैं नहीं जाना चाहता । तुम मुझे यहीं पर उतार दो । फ्रीस के लिये मैं अपनी जान नहीं दे सकता । मैं नहीं जाना चाहता ।

तुम कैसे...कैसे आदमी...औरत हो जी ? मैं नहीं जाना चाहता ।”

“मैं कह चुकी हूँ कि बोलने का ज़रूरत नहीं । बोलोगे तो ख़ता खाओगे । समझे !” कड़ककर पद्मा ने कहा और वह कार को बराबर तेज़ी से उड़ाये चली जा रही थी ।

डाक्टर साहब चुपचाप बैठ गये । उनका तमाम शरीर काँप रहा था । भय के मारे प्राण पखेरू परेशान हो चुके थे ।

कार सपाटे के साथ चली जा रही थी ।

रात्रि के ग्यारह बज गये और अब ज्यादा दूर नहीं था वह गाँव । पद्मा ने कार और भी तेज़ कर दी ।

“तुम ज़रूर कहीं टकराकर ही मानोगी । आज पता नहीं किसका मुँह देखा था मुबह जो तुमसे पाला पड़ गया ।” भयभीत स्वर में डाक्टर ने कहा ।

“अपना ही देखा होगा ।”

यकायक बँट्री फेल हो गई और कार की रोशनी बन्द हो गई ।

पद्मा का तमाम शरीर पसीना-पसीना हो गया । कार एक दम धीमी कर दी । उसका सिर चकरा रहा था ।

लोकनगर आ गया ।

चारों ओर शांत था ।

केवल एक ओर से किसी के रोने की आवाज़ आ रही थी ।

पंकज का मकान उसी ओर था ।

बीस वर्ष बाद

: ६ :

“सरोज बाबू पास होने की बधाई है, बधाई ।”

“अरे ! शीला ! तुम यहीं हो । कब आईं तुम ? पत्र भी नहीं लिखा कि कब आ रही हो ? अभी-अभी तो बधाई का तार भेज कर आ रहा हूँ । तुम फ़र्स्ट आई हो, इसलिये बधाई मुझे देनी चाहिये ।”

“आपकी जगह मैंने ले ली...हाँ फिर आपको कविता करने का भी तो मर्ज लग गया है । इसलिये तो आप सेकेण्ड आये हैं ।”

पास हो गये यही क्या कुछ कम गनीमत है ?”

“जी ! जानो पास होने में भी कुछ शक था । ऐसी बनने की बातें मुझे अच्छी नहीं लगतीं ।”

दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े । शीला ज्यों ही सरोज के कमरे में घुसी तो सॉमने रंग बिखरे पड़े हुए थे और एक तख्ता उलटा दीवार से लगा हुआ था ।

जाते ही तख्ता पलट दिया । सरोज ने फुर्ती से हाथ में से लेते हुए कहा, “तुम्हारी बचपन की आदत अभी गई नहीं । इसे छेड़, उसे तोड़, इसे फोड़...भला यह भी कुछ बात हुई ?”

“वाह जी वाह ! आप तो चित्रकार भी बन गये । आखिर दुनियाँ का कोई काम आप किसी दूसरे के लिए भी रहने देंगे या नहीं । जिधर भी देखिये सरोज बाबू अपना कदम बढ़ाये तैयार हैं ।” मुस्कराते हुए शीला ने कहा ।

“ये सब समय काटने के साधन हैं शीला ! आखिर करता भी क्या ?”

“अच्छा ज़रा आपकी कारीगरी भी तो देख लूँ ।” कहकर तख्ते को देखने के लिये हाथ बढ़ाया ।

“नहीं जी, अभी खत्म नहीं किया है । अभी तो अधूरी है तस्वीर ।”

“सरोज बाबू मुझे अधूरी ही तस्वीरें अधिक पसंद आती हैं।” शीला ने मुस्कराते हुए कहा और फिर पटरा पलटने के लिए ज़िद की।

थोड़ी देर छोना झपटी के बाद आखिर तस्वीर देख ही ली।

“वाह जी ! आपने मेरी तस्वीर इतनी क्यों बिगाड़ डाली है ?” कहकर होठों ही में मुस्कराने लगी शीला परन्तु उसके हृदय में गुदगुदी उठ रही थी।

“कौन कहता है कि यह आपकी तस्वीर है ?” सरोज बोला।

“और नहीं तो किसकी है ?” मुँह बनाकर शीला बोली।

“अजी अभी अधूरी है। इसी लिये तुम्हारी जैसी मालूम होती है। जब पूरी हो जायगी तो बदल जायेगी।” सरोज ने कहा।

“फिर है किसकी यह ?” अकड़ कर शीला ने पूछा।

“यह एक देवीजी की है शायद तुम भी इन्हें जानती हो।

हाँ ! शीला यह देवीजी बड़ी ही अजीब हैं।”

“क्यों ?”

“मैं इन्हें पूजता हूँ और यह मुझे परेशान करती हैं। समझीं शीला !” आँखें तरेर कर सरोज ने कहा।

“हाँ तो पूजना छोड़ दो। बस ! फिर सब अकल ठिकाने आ जायेगी। जहाँ दो दिन पूजा की सामग्री नहीं मिलेगी...फिर देखना क्या होता है ?”

दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े।

“क्यों जी ! क्या देहली में कुछ मसखरापन अधिक होता है ?”

“शायद होता हो !” बड़े गम्भीर भाव से शीला ने कहा।

“तब तुम तो छुट्टी भर देहली ही रही होगी। वहीं रही थीं न !”

“अच्छा रहने दीजिये बस ज्यादा बातों को। मैं बधाई देने आई और आप बातों में ही टालना चाहते हैं। मैं माताजी के पास जाती हूँ।” कहकर शीला सीधे ‘माताजी...माताजी’ कहती घर के अन्दर चली गई।

“ओहो शीला रानी ! कहो बेटी कब आईं देहली से ? अच्छी तो रही ?” माताजी ने प्यार से पूछा ।

“बहुत अच्छी तरह से रही माताजी ! देहली तो बहुत थोड़े दिन रही । शिमले चली गई थी बाबूजी के साथ । आज ही लौट कर आई हूँ ।” शीला ने नम्रता पूर्वक आदर के साथ उत्तर दिया ।

“लिख भी नहीं दिया आने से पहिले ! सरोज कल ही तेरी याद कर रहा था । कह रहा था कि अब यूनीवर्सिटी खुलने ही वाली है और तुम आती ही होगी ।” अपने पास बिठलाते हुए माताजी ने कहा ।

“जी !” लजाकर शीला बोली ।

“अब और भी पढ़ने का इरादा है क्या बेटी ?”

“क्यों नहीं भला माताजी ! अभी एम० ए० तो करना ही है । एम० ए० से कम तो व्यर्थ सा ही है । अधूरी पढ़ाई भला किस काम की ?”

“अच्छा बात है बेटी ! हाँ, सरोज ने छुट्टियों में कुछ बड़ी सुन्दर कवितायें लिखी हैं ।” माताजी ने सूचना दी ।

“अच्छा माताजी ! बड़े शरमीले होते जा रहे हैं । मुझे तो एक भी नहीं सुनाई उन्होंने ।” शीला मुस्करा कर बोली ।

“एक भी नहीं सुनाई !” माताजी ने आश्चर्य के साथ पूछा ।

“जी कभी नहीं ।”

“उसकी एक किताब भी तो...।”

“कब माताजी ? कब ?”

सरोज भी पीछे आ गया । शीला ने सरोज की ओर देखकर कहा, “क्यों जी बतलाया भी नहीं ? बस यही बातें मुझे अच्छी नहीं लगती हैं आपकी छुपाने वाली ।” मुँह मटका कर शीला ने कहा ।

“माताजी ! भला तुम्हीं बतलाओ मैं इसे बतलाता कब ? आते ही तो मिठाई माँगनी शुरू कर दी । आईं हैं पढ़ने के लिये और माँग रही हैं मिठाई ।” हँसते हुए सरोज ने कहा ।

“वह बात टलने वाली नहीं है सरोज बाबू ! अच्छा हाँ माताजी आप मिठाई का इन्तज़ाम कर लीजिये और किताब की बात मैं स्वयं इनसे भुगत लेती हूँ ।”

माँ मुस्कराती हुई चली गई ।

“यह भुगतना आप कहाँ से सीख आईं शीला देवी ! क्या मैं पूछ सकता हूँ यह बात ?” मुस्कराते हुए सरोज ने पूछा ।

“जी ! ये बातें भी देहली में ही सिखलाई जाती हैं । शायद आपने कभी देहली नहीं देखी ।” शीला ने ज़रा एक अदा के साथ कहा ।

“जी नहीं, अच्छा यह लीजिये ।” यह कहते हुए सरोज ने एक पुस्तक शीला के हाथों में दे दी ।

“परिणय’ नाम तो बहुत सुन्दर दिया है आपने ।” शीला पुस्तक के पन्ने उलटते हुए बोली । “छपाई वगैरह भी बहुत सुन्दर है ।”

“जी पुस्तक भी सुन्दर ही लिखने का प्रयत्न किया है ।” कहकर सरोज मुस्करा दिया ।

शीला ने पहिला पृष्ठ खोला और अपना चित्र पाया ।

“अरे ! मुझी को समर्पण की गई है । तब वास्तव में सुन्दर लिखी गई होगी । बस मैंने आपकी दूसरी बात भी मान ली ।” मसखरेपन से शीला ने अन्दर-ही-अन्दर अपने दिल को गुदगुदाते हुए कहा ।

“परन्तु बात तो आपने अभी एक भी नहीं मानी ।”

“देखो जी ! पहिले कहे देती हूँ । अभी करना है एम० ए० पास । हाँ और दोनों को पास करना है । अगर इधर-उधर की बात चलाई तो ठीक नहीं होगा ।” तर्जनी ऊपर उठाकर होठों के सामने लगाते हुए कहा ।

“तब फिर तुम्हें शायद भुगतना पड़े । क्यों यही बात है न ?”

“यानी आप मज़ाक करने का इरादा कर रहे हैं । क्यों जी ? श्री सरोज कवि जी ?” मुस्कराते हुए शीला ने मीठी चुटकी लेते हुए कहा ।

“अच्छा चलो शीला पहिले चाय पीलो” माताजी ने आकर कहा ।

“जी मैं अकेली नहीं पीती हूँ चाय।” मुँह बनाकर शीला ने कहा।

“बावली कहीं की ! अकेली क्यों पियेगी ? सरोज भी तो।”

“जी ! और यह खिसके किधर को जा रहे हैं ?” शीला ने पूछा।

“अभी आता है।” दोनों चाय पीकर फिर सरोज वाले कमरे में चले गये।

“तुम्हें हमारे घर भी तो चलना होगा।”

“अभी ?”

“हाँ।”

“क्यों ?”

“माताजी बहुत याद कर रही थीं।”

“जी !” सरोज ने मुँह बनाकर कहा।

“जी क्या ? सच कह रही हूँ। चलो जरा जल्दी करो। मैं तो यहाँ बातों में भूल ही गई। वहाँ तो इन्तज़ार हो रहा होगा। खाना भी वहीं खाना है आज आपको।”

“हर वक्त तुम्हें खाने की ही चिन्ता बनी रहती है। अभी अभी तो...।”

“अच्छा-अच्छा इस लेक्चर को रास्ते में सुनूँगी। तुम कपड़े पहिनो और मैं माताजी से पूछ आती हूँ।” इतना कहकर बिना उत्तर के इन्ज़ार के शीला घर के अन्दर चली गई।

तैयार होने में ज्यादा देर नहीं लगी। कार में बैठ कर दोनों शीला के घर पहुँच गये।

“माताजी ! सरोज बाबू ने यह किताब लिखी है।” किताब माँ के हाथ में देती हुई शीला बोली।

“सरोज ने लिखी है यह पुस्तक !”

“जी हाँ।” प्रसन्नतापूर्वक शीला ने कहा।

“बड़ा होनहार बेटा है। सकुशल तो रहे सरोज बेटा ! छुट्टियों भर कलकत्ते में ही रहे ?” शीला की माताजी ने प्रश्न किया।

“जी ! यहीं रहा ।” सरलता पूर्वक सरोज ने उत्तर दिया ।

“जब शीला ने तुम्हें शिमला बुलाया था तो तुम क्यों नहीं आये बेटा ?” शीला की माताजी ने पूछा ।

“उस समय यह कियाब छप रही थी माताजी ! इसी काम में फँसा हुआ था । प्रेस वालों को भी आप वस प्रेत ही समझें । जब चिपटते हैं तो वस ऐसे चिपटते हैं कि मानो प्रेत चिपट गये ।”

“जी ! और मुझे लिख दिया, एक बहुत जरूरी काम है ! उसी में फँसा हुआ हूँ । एक मिनट की भी मुझे फुर्सत नहीं मिलती ।” मुँह बनाकर शीला ने कहा ।

“ऐसा भला क्या काम था ? तुम ही कहो माताजी ! क्या किताब के प्रूफ शिमले में नहीं पढ़े जा सकते ? मुझे वस यही बात अच्छी नहीं लगती ।” कहकर शीला कमरे से बाहर हो गई ।

“कितनी जल्दी नाराज हो जाती है शीला ?” सरोज ने कहा ।

“नहीं बेटा ! वह तुमसे कभी भी नाराज नहीं होती । शिमले में रोजाना तुम्हें याद करती थी ।

सच कहती हूँ बेटा ! जब उसने देखा कि वह फ्रस्ट और तुम सैकिण्ड हो तो उसे विश्वास नहीं हुआ । तार करके यूनीवर्सिटी से पूछा । बड़ा अफसोस भी हुआ उसे यह जानकर ।”

“यह क्या कह रही हो माताजी ! मुझे तो सच कहता हूँ बहुत खुशी हुई ।” सरोज लजाकर बोला ।

“सो तो एक ही बात है बेटा !”

इतने में शीला अन्दर आ गई । सरोज की ओर मुँह करके बोली, “अच्छा चलिये ! उठिये ।”

“लेकिन कहाँ के लिये ?” सरोज ने पूछा ।

“चाय के लिये !” शीला बोली ।

“मैं चाय नहीं पीऊँगा ।”

“जी ! मैं चाय नहीं पीऊँगा ।” मुँह बनाकर शीला ने खिजाते हुए

कहा । “चाय पीनी होगी, चाय पीनी होगी...चलो...उठो...जल्दी करो फिर सिनेमा चलना है ।” मानो सब कार्यक्रम शीला पहिले ही बना चुकी थी और बनाकर ही वह सरोज को लेने गई थी ।

“माताजी आप इसे बिल्कुल भी नहीं समझातीं ।” सरोज ने कहा ।

“जी समझाने के लिये आपही काफ़ी हैं । लेकिन ज़रा जल्दी कीजिए ! चाय ठंडी हो रही है ।” जल्दी-जल्दी प्यालियों में चम्मच डालकर दूध-पानी मिलाते हुए शीला ने कहा ।

बेचारे को ज़बरदस्ती चाय पीनी पड़ी । यह नई मुसीबत थी सरोज के साथ । दोनों चाय पीकर सिनेमा चले गये ।

रास्ते में काफ़ी बातें हुईं । छुट्टी भर की रुकी हुई बातों का भंडार खुल गया । इधर-उधर के सिलसिले की बातों का भी प्रधान बातों के दौरान में नम्बर आ जाता था ।

“एक दिन तो मेरी कार टकराने से ज़रा-ही-ज़रा बची सरोज बाबू ।” शीला ने एक घटना के दौरान में बतलाया ।

“तुममें यह बहुत बुरा ऐब...।”

“जी मैं ऐब ठीक करना नहीं चाहती आपसे । मैं केवल बात सुना रही हूँ—आप अगर सुनना न चाहें तो मना कर दीजिए ।” मुँह बनाकर शीला ने कहा ।

“तब आप मना ही समझ लीजिये ।” सरोज ने भी मुँह फुला लिया ।

“जी नहीं, मना समझी नहीं जाती; की जाती है—जैसे मैं आपसे मना करती हूँ कि आप बात के बीच में कोई बात न कहें वैसे ही आप भी कर दीजिये । समझे कविवर सरोजबाबू !” शीला यह कहकर कनखियों से हँस रही थी ।

“अच्छा देखो बात चाहे जो कहे जाओ लेकिन यह इतना लम्बा चौड़ा नाम मुझे अच्छा नहीं लगता ।” सरोज ने मुँह बनाते हुए कहा । फिर कभी इस प्रकार का नाम न लेना ।”

सरोज को घर पर छोड़ कर ज्यों ही शीला चलने लगी तो सरोज बोला, “मेहरबानी करके कार ज़रा देहली की तरह मत चलाना ।”

शीला ने आँख का तिरछा इशारा सरोज की ओर किया और तुरन्त कोठी के सामने सीधी जाने वाली सड़क पर पचास मील की रफ़्तार से कार को छोड़ दिया । कार फर्र से उड़ गई ।

सरोज कुछ काँपता हुआ-सा मुस्करा कर रह गया ।

: १० :

पद्मा का जीवन अब बिल्कुल बदल गया । लोकनगर में अब उसके लिये क्या था ? यों तो कहीं भी कुछ नहीं था । उसका जीवन भूलों की एक गठरी बन गया था । उन्हीं की हिफ़ाजत आजकल वह कर रही थी । अपनी गलतियों का एक पिटारा उसके पास था । वही उसकी आखिरी सम्पत्ति भी थी ।

विनोद बाबू कलकत्ते में ही हैं, परन्तु उन्होंने विवाह नहीं किया । उनकी मोटर की दूकान खूब ठाट के साथ चलती है । कभी-कभी पद्मा से अब भी मिलने के लिये चने आते हैं परन्तु कोई विशेष बात नहीं रह गई है । अब कोई आकर्षण नहीं रह गया है इस मिलने में ।

एक नई और तमाशे की सी बात जो दुनिया को लगती है वह यह है कि वह पद्मा को बहिन कहने लगे हैं । भाई बहन का नाता आजकल दोनों के बीच चलता है । परन्तु मित्र-मंडली में कोई शक करने वाला भी अब बाकी नहीं है ।

एक दिन विनोद बाबू संध्या को कोठी पर चले आये और सीधे पद्मा के ही कमरे में पहुँच गये ।

पद्मा पूजा कर रही थी, इसीलिये चुपके से बाहर निकल आये ।

वह पंकज का चित्र था जिस पर फूल चढ़ाकर पद्मा ने सिर टिका रक्खा था ।

पूजा के बाद पद्मा ने विनोद बाबू को अन्दर बुलवा लिया ।

“कैसे कष्ट किया विनोद बाबू ?” पद्मा ने पूछा ।

“तुमने विनोद बाबू कहना नहीं छोड़ा पद्मा । मैं अब तुमसे नहीं बोल्ँगा ।” नाराजगी की ध्वनि में विनोद ने कहा ।

“नाराज मत हो भय्या ! मैं पुरानी आदत की वजह से बोल जाती हूँ । अब मैं किसी को नाराज होता नहीं देख सकती । नाराज ही तो किया है मैंने अपने जीवन से सब को । अब किसी की भी नाराजगी बरदाश्त करने की शक्ति मुझ में नहीं रह गई है ।”

“बहिन ! अब शीला बड़ी हो गई है । उसके विवाह का इन्तजाम करना चाहिये । काफी पढ़ चुकी । मेरा खयाल है कि एम. ए. पास करने की कोई जरूरत नहीं ।” गम्भीरता पूर्वक विनोद ने अपनी राय दी ।

“लेकिन भय्या वह मानेगी नहीं । वह विवाह करना अभी नहीं चाहती ।” पद्मा ने विनोद की बात का उत्तर देते हुए कहा ।

“तब सब कुछ उसी की मर्जी से तो होगा नहीं । मैं पूछता हूँ कि आखिर तुम भी कुछ सोचती हो या नहीं या जो कुछ वह सोचती है बस वहीं तक तुम्हारा सोचना भी मनहसिर है ।”

“सोचती तो हूँ लेकिन एम० ए० अगर और पास करले तो उसमें क्या हानि है ?” सरलता पूर्वक पद्मा ने कहा ।

“लेकिन बहिन ! पक्की बात तो हो जानी चाहिये । तुम नहीं जानती कितनी मुसीबत होती है इन कामों में । कई-कई वर्ष तो यों ही चुटकियों में निकल जाते हैं ।”

इसी प्रकार बातों का रुख बदल गया । बातें कहीं से कहीं पहुँच गईं ।

“कितनी भोली है बेचारी शीला ! आज इतने दिन हो गये, परन्तु उसने कभी नहीं जाना कि उसकी माँ मेरे अलावा कोई और है ।”

“जब हरिद्वार से तुम इसे लाई थीं, तो केवल पाँच वर्ष की बालिका थी। बस यही रही होगी न इसकी उम्र ?”

“मेरा दिल भर आया था भय्या जब मैंने इसे वहाँ रोते हुए देखा। इसकी आँखों से पानी बह रहा था और यह फटे कपड़े पहिने सर्दों में ठिठुर रही थी। काँप रही थी थर-थर।” करुणा-भाव से पद्मा ने कहा।

“इसीलिये तो मैं कह रहा हूँ तुम्हें शीघ्र ही चिन्ता करनी चाहिये। अपना बच्चा हो तो कोई कठिनाई नहीं होती, परन्तु ऐसे मामले में काफ़ी परेशानी का सामना करना होता है।” गम्भीर मुख-मुद्रा बनाते हुए विनोद ने पद्मा की राय दी।

“क्या कह रहे हो भय्या ? शीला मरी लड़की है। उसके लिये क्या परेशानी होगी भला ? कौन जानता है उन बातों को ?” निर्भय होकर तनिक उत्तेजना के साथ पद्मा ने कहा।

“ये बातें छिपती नहीं हैं बहिन ! हमें विवाह से पहिले ही खोल देनी होंगी। नहीं तो फिर जीवन में दुख देती हैं ये बातें।” एक विचार-शील व्यक्ति की भाँति राय दी विनोद ने।

पद्मा कुछ सोच में पड़ गई।

“सोचने की कोई बात नहीं है बहिन ! हमें चाहे गरीब घर में शीला की शादी करनी हो, परन्तु शादी वहाँ करेंगे जहाँ पर शीला का मान हो।” गम्भीरता पूर्वक विनोद ने सलाह दी।

कहकर विनोद चला गया। शीला इस समय अपने कमरे से माँ के पास आ रही थी। दरवाजे पर खड़ी होकर उसने उन बातों को सुन लिया जो विनोद और पद्मा के बीच अभी चन्द मिनट पूर्व हो रही थीं।

अवाक् रह गई आज शीला। माँ के पास न जाकर सीधी फिर अपने ही कमरे में चली गई।

शीला को थोड़ा-सा ध्यान अवश्य कभी-कभी आ जाता था इस बात का कि वह पद्मा की लड़की नहीं है, परन्तु पद्मा का प्यार उसे हमेशा

इस भाव से दूर खींच लिया करता था। पद्मा ने आज तक कभी भी उसे कोई ऐसा अवसर नहीं दिया कि वह यह महसूस कर सके कि वह उसकी नहीं है।

आज बात बिल्कुल स्पष्ट हो गई। उसे यह बात सरोज से जाकर कहनी होगी। अपने इस छुपे हुए गोलमाल को वह सरोज से नहीं छुपा सकती। सरोज से इस राज को छिपाना किसी दिन घातक सिद्ध हो सकता है।

कई दिन से शीला का मन परेशान था। आज खाना भी नहीं खाया उसने।

“खाना क्यों नहीं खाया बेटी?” पद्मा ने प्यार के साथ पूछा।

“भूख नहीं लगी माताजी! कोई खास बात नहीं है। मेरी तबियत बिल्कुल ठीक है।” मुख पर प्रसन्नता लाने का प्रयास करते हुए शीला ने कहा।

किसी भी प्रकार पद्मा पर वह यह प्रकट नहीं करना चाहती थी कि उसका मन कुछ खिन्न है। पद्मा का जीवन दुःखी है यह वह भली प्रकार जानती थी। इसी लिये कभी कोई ऐसा कार्य उसने नहीं किया था कि जो पद्मा को बुरा लगे। वह पद्मा की मनोस्थिति को हमेशा समझ कर चलती थी।

एक दिन पद्मा के पूजा के समय जब शीला पहुँच गई थी तो बचपन में ही भला उसने क्यों कह दिया था उस चित्र को कि “यह तेरे पिता हैं।” यह वह मान सकती थी कि पद्मा उसकी माँ है परन्तु...

सरोज बड़े चाव से आया। आते ही सीधा पहिले माँ के पास पहुँच कर प्रणाम किया और फिर शीला के कमरे में चला गया।

“अरे! लेटी हुई हो। मालूम होता है दिन में सोने की बान पड़ गई है।” यों ही अल्हड़पन में उसने कहा।

“नहीं, सो तो नहीं रही थी।” शीला ने सादे स्वर में कहा।

कोई मिठास नहीं था इस उत्तर में परन्तु एक भोलापन जरूर था । इस भोलेपन की आवश्यकता इस समय सरोज को नहीं थी ।

“तुम्हें होता क्या जा रहा है शीला ? जब देखो तब यहीं पड़ी रहती हो ।” अन्यमनस्क भाव से सरोज ने कहा ।

“परसों आया था तो यहीं मिलीं,

कल आया था तो यहीं मिलीं,

“और आज आया हूँ तो आप यहीं पर विराजमान हैं । आखिर माजरा क्या है ? चलो जल्दी...चलो...खड़ी हो । देखो देर मत करना नहीं तो मार खा जाओगी । समझीं ।”

शीला मुस्करा दी ।

“देखो जी । साफ़ कहे देता हूँ मुस्कराने से काम नहीं चलेगा । जल्दी से खड़ी हो जाओ ! देखती नहीं हो सवा छै बज चुके हैं ।” घड़ी वाली कलाई शीला की आँखों के सामने करते हुए बोला ।

“फिर आखिर हुआ क्या ?” समझते हुए भा बात टालकर शीला बोली ।

“क्या हुआ ? जानो कुछ जानती ही नहीं । सिर्फ़ पन्द्रह मिनट रह गये हैं खेल शुरू होने में और आप कहती हैं कि हुआ क्या ?” क्रोध प्रदर्शित करते हुए सरोज ने कहा ।

“तब फिर यों कहिये कि आपको सिनेमा चलना है ।” मुस्करा कर एक इठलन के साथ शीला ने कहा और उसकी इस बाँकी मुस्कराहट पर सरोज का मन-मयूर नाच उठा ।

“जी ! मुझे सिनेमा चलना है । इसलिये कृपा करके मिस शीला देवी, आप तैय्यार हो जाइये ।”

“बस ! इतनी ज़रा-सी बात के लिए आप परेशान हैं ।”

दोनों खिलखिलाकर हँस दिये । दोनों की जीवन-सरिता आनन्द और उमंगों की लहरों में बह गई ।

फिर कई दिन निकल गये । कितनी ही बार शीला ने विचार किया

कि वह अपने दिल की कसकने वाली बात को सरोज के सामने रखदे परन्तु न जाने क्या-क्या अड़चनें बीच-बीच में आती गईं। बात वह उससे न कह सकी। कई बार ज्यों ही बस कह डालने का अवसर आया कि बस कुछ रुकावट सामने आ गई।

असल अड़चन तो यह थी कि कहते हुए उसे भय मालूम देता था। सोचती थी कि कहीं अन्य दुनियादारों की तरह यदि कहीं सरोज भी इससे प्रवाहित हो गया तो वह कहीं की भी नहीं रह जायेगी। उसके जीवन की आशाएँ, उमंगें, स्वप्न—सब यहीं पर समाप्त हो जायेंगे। परन्तु वह आखिर उस बात को छिपा कर भी कब तक रख सकती थी। घटना को एक दिन अपने आप ही स्पष्ट हो जाना था। इससे तो यह कहीं बेहतर था कि वह एक वीर रमणी की भाँति जो सत्य है उसे अपनी जबान से कहे और देखे कि उसका परिणाम क्या होता है।

आज शीला ने कड़ा दिल कर लिया और पूरे तौर पर तैयार हो गई उस बात को कहने के लिये टेनिस के बाद दोनों शीला के घर पर चले गये।

“आजकल एक नई किताब लिख रहा हूँ शीला ! बहुत ही सुन्दर लिखी है वह भी शीला।” आराम कुर्सी पर बैठकर पीछे तकिया लगाते हुए सरोज ने टेनिस का रैकट घुटनों पर रखते हुए कहा।

“अपने मुँह मियाँ मिट्टू बन रहे हो। वाह जी वाह। बड़े सुन्दर कवि हो।” होठों को मधुर प्यार में बिचकाते हुए शीला ने कहा और आँखों की भाषा में कुछ और ही कह डाला, जिसे केवल सरोज ही समझ सकता था।

“देखो शीला मेरा मजाक उड़ाया तो...”

“तो क्या ? बोलो !” तन कर सामने खड़ी होकर शीला ने कहा।

“अच्छा जल्दी करो। माता जी इन्तजार कर रही होंगी।” बात बदलकर सरोज ने कहा।

यहाँ से दोनों सरोज के मकान पर चले आये। सरोज का नया

कमरा मकान से बिल्कुल अलग था, कोठी के एक कोने में बाहर की ओर ।

“मैं तुमसे ..” शीला की ज़बान कुछ कहते-कहते बन्द हो गई ।

‘हाँ-हाँ कोई बात कहना चाहती हो ! यही बात है न ! यह तो मैं कई दिन से समझ रहा हूँ कि तुम कुछ कहना चाहती हो और कहते-कहते रुक जाती हो । तुम मेरे सामने हर बात कह सकती हो शीला । मुझ में हर बात सुनने की ताकत है ।’

“अच्छा जाने दीजिये मैं नहीं कहूँगी ।” सकुचाकर शीला की ज़बान रुक गई ।

“रूठ गईं बस ! कहोगी कैसे नहीं ? मैं आज सुनकर ही रहूँगा । जानती हो मैं आज तुम्हें अपने साथ यहाँ पर लाया ही इसलिये हूँ कि तुम्हारे अन्दर से घुमड़ कर होठों तक आ जाने वाली बात को बाहर निकाल लूँ ।”

शीला ने अपने को मँभाला । आखिर एक-न-एक दिन तो उसे यह वान कहनी ही थी । वह कब तक उसे अपने अन्दर का बुराया बनाकर पाले रह सकती थी ? आज वह अपने को न रोक सकी । बहुत ही दीन भाव से गिड़गिड़ा कर बोली, “मैं अनाथ हूँ सरोज बाबू । इस संसार में मेरा कोई नहीं है ।”

“मो तो मैं भी हूँ शीला ! परन्तु तुमने यह कैसे कहा कि इस संसार में तुम्हारा कोई नहीं, जिसने तुम्हें पाल-पोस कर इतना बड़ा किया है क्या यह कहकर तुम उम देवी को भुला सकती हो ? तुम्हारा एक साथी भी है शीला ।” अन्त में बहुत ही गम्भीरता पूर्वक सरोज ने कहा ।

“मैं मज़ाक नहीं कर रही सरोज बाबू !” शीला बहुत गम्भीर थी ।

“मैंने भी मज़ाक नहीं किया ! मैं इस समय जो कुछ कह रहा हूँ वह बिल्कुल सत्य है । मैं भी अनाथ हूँ और तुमसे आश्रय चाहता हूँ । भिक्षा माँगता हूँ तुम्हारे सामने किसी चीज़ की ।...बस यही कहलवाना

चाहती हैं आप मुझसे ।” मुस्कराते हुए सरोज कह रहा था । उसकी मुस्कान ने एक भ्रम पैदा कर दिया था शीला के मन में ।

“यह बात नहीं है सरोज बाबू !” शीला अब और भी गम्भीर हो गई थी ।

सरोज भी मुस्करा अवश्य रहा था परन्तु उसकी बातों में गम्भीरता थी ।

“बहुत गम्भीर न हो शीला ।” शीला का हाथ अपने हाथ में लेते हुए सरोज ने प्यार से दुलारते हुए कहा ।

‘हाँ ! आज मुझे तुमसे गम्भीर ही बातें कहनी हैं सरोज !’ शीला की आँखों से आँसुओं की बूँदें टपक पड़ीं । अन्दर से घुमड़ कर विचारों का बादल आया और चार बूँदें गिरा गया । शीला डबडबायी आँखों से देख रही थी ।

“आखिर बात क्या है शीला ! तुम रो रही हो । मेरी कुछ भूल हुई हो तो मैं क्षमा माँगता हूँ । मैंने तुम्हारा दिल दुखाने के लिये कुछ नहीं कहा । माफ़....” सरोज जरा सकपका गया । वह समझ नहीं पाया कि शीला का रोना किस बात को लेकर था । उसके दिल में आज अवश्य कुछ दर्द था ।

सरोज शीला के निकट कोच पर बैठ गया । अपने रूमाल से उसकी आँखें पोंछते हुए बोला, “कहो शीला ! चुप मत रह जाओ । मैं सुनना चाहता हूँ ! मन की बात कह डालने से दिल हलका हो जाता है । हृदय का गुबार निकल जाता है ।”

“मेरे माँ बाप का पता नहीं है सरोज, मैं अनाथ हूँ ।” शीला ने यह बात एक बड़ी बात मानकर कही थी परन्तु सरोज पर उसका कोई प्रभाव न हुआ । फिर भी उत्सुकतावश पूछा, “और माता पद्मादेवी कीन हैं ?”

“इन्होंने मुझे पाला है । हरिद्वार में कुम्भ के मेले में मैं खोई हुई एक बालिका के रूप में इन्हें मिली थी । यह मुझे उठा लाई और पाल

लिया । बस यही है कुल कहानी । मैं बे माँ-बाप की अनाथ लड़की हूँ । भविष्य में यही जानकर मुझसे मिलना ।”

कुछ देर के लिये दोनों चुप रहे । सरोज को आश्चर्य हुआ यह सुन कर परन्तु उसने फिर गम्भीरता पूर्वक शीला के हाथों को अपनी हथेलियों से सहला कर पूछा, “तुमसे किसने कही यह बात शीला ?”

“मामाजी और माताजी में बातें हो रही थी । मैं उसीकमरे में जा रही थी । किवाड़ के पीछे से अपने बारे में जिक्र होता जब मैंने सुना तो मैं वहीं पर ठिठक गई । डुपे-डुपे ही मैंने उनकी सब बातें सुन लीं । उसी से मुझे अपने विषय में यह सब ज्ञात हुआ ।” कहकर शीला तनिक विचलित-सी हो उठी । जब से उसने यह बात सुनी थी उसे ऐसा महसूस हो रहा था कि मानो उसके पैरों के नीचे से ज़मीन निकल गई है और अब वह हवा में ठहरी हुई है, निराधार । उसे सहारा देने वाला कोई नहीं है । माँ बाप का पता न होने से उसकी जाति का पता नहीं, उसके खान्दान का पता नहीं, उसके समाज का पता नहीं,—फिर कौन उसे आदर देगा भला ? सड़क पर पड़ा वह निराधार फूल ही सही परन्तु डाली से टूटा हुआ फूल है । रंगीन ही सही परन्तु यह पता नहीं कि उसका असली रंग क्या है ?

“समझ गया ।” गम्भीरता पूर्वक सरोज ने कहा और फिर कुछ ठहर कर बोला, “परन्तु क्या माताजी ने कुछ कहा है तुमसे ?”

“यह असम्भव है सरोज !” उसी गम्भीरता के साथ शीला ने उत्तर दिया ।

“फिर इस प्रकार दुःखी होने की क्या बात है शीला ! माँ बाप तो अनेकों आदमियों के नहीं होते । परिवार वालों का पता भी नहीं होता । परन्तु क्या इस प्रकार उसके लिए दुनियाँ से अलग हो जाना चाहिये । तुम्हें किस बात की चिन्ता है शीला ! एक माँ से छूटी तो तुम्हें दूसरी माता मिल गई भाग्य से । बहुत से बच्चों को तो इस प्रकार भटककर जीवन भर भटकना होता है ।”

शीला फिर भी अपनी सारी बात नहीं कह सकी । उसने मन के भावों को मन में ही रोकने का प्रयत्न कर लिया । आज वह बात और आगे नहीं चलाना चाहती थी । वह चाहती थी केवल अपने मन का चोर निकालना ।

“शीला शायद तुम समझती हो कि तुम ही अपने माँ बाप का पता नहीं जानतीं । मेरी कहानी शायद तुमने नहीं सुनी ।” शीला को अपने पास में समेटते हुए सरोज ने कहा ।

शीला ने सरोज के मुँह पर देखा और समझ न सकी कि वह क्या कहना चाहता है ।

“मेरी माँ का आज पता नहीं कि वह कहाँ पर ठोकर खाती फिरती होंगी ।” सरोज ने गम्भीरता पूर्वक कहा ।

“क्या ?” आश्चर्य चकित होकर शीला ने कहा ।

“यही बात है शीला ! तुम जानती हो कि मैं गोद लिया हुआ...”

“यह मैं जानती हूँ सरोज !”

“मैं जेल में एक अनाथ स्त्री के पेट से पैदा हुआ था । जेलर साहेब ने दया करके मुझे गोद ले लिया था । आज वही मेरे पिता हैं ।” चार शब्दों में सरोज ने कहा ।

“और माता ?”

“उन्होंने यहाँ रहना पसन्द नहीं किया । मुझे पालने का उनके पास कोई साधन नहीं था, इसलिए उन्होंने मुझे जेलर साहेब के हवाले कर दिया ।”

“तब क्या उन्हीं की खोज में तुम छुट्टियों भर दुनियाँ भर की खाक छाना करते हो सरोज !” शीला ने पूछा ।

“यही बात है शीला ! उस देवी ने मेरा जीवन सुधारने के लिए अपना सहारा, अपने कलेजे का टुकड़ा जेलर साहेब के हवाले कर दिया ।”

सरोज शीला को उसके घर छोड़ आया। एम० ए० की पढ़ाई प्रारम्भ हो गई। दोनों ने क्लास में जाना शुरू कर दिया।

“इस वर्ष देखें कौन फर्स्ट आता है ?” एक दिन शीला ने कहा।

“तुम्हीं आना शीला ! मुझे अब इसका कोई शौक नहीं रह गया है। मैं चाहता हूँ कि तुम ही प्रथम आओ।”

: ११ :

एक दिन शाम को शीला और सरोज दोनों एक फ़ोटो लिए हुए विनोद बाबू की दूकान पर पहुँच गये। दरवाज़े में बढ़ते ही सरोज बोला, “मामाजी ज़रूर पहिचान लेंगे।”

“नहीं पहिचान सकते।” शीला ने कहा।

“पहिचान लेंगे।” ज़िद करता हुआ सरोज बोला।

“नहीं पहिचान सकते।” हठ से शीला ने कहा।

“कैसा झगड़ा हो रहा है ? क्या बात है शीला ? कहाँ से आ रहे हो सरोज ?” एक ही बार में विनोद बाबू ने तीन सवाल पूछ डाले।

“यहीं से, फोटोग्राफ़र के यहाँ से आ रहे हैं मामाजी !”

“क्या कोई फ़ोटो खिचवाया है ?”

“जी !”

“देखें ज़रा।”

“आपको दिखलाने के लिए तो लाये ही हैं।” कहते हुए शीला ने विनोद बाबू के हाथ में फ़ोटो दे दिया। “अच्छा बतलाइये ये कौन हैं ?”

“किसका चित्र है यह ?”

“आप ही बतलाइये।”

“एक तो सरोज बाबू हैं ही और...दूसरे साहब...”

“जी उन्हीं को तो पूछना है।” सरोज ने मुस्कराते हुए कहा।

“अब ज़रा यह तो बतला दीजिये कि सरोज बाबू कौनसे हैं ?”

विनोद बाबू वाक़ई चक्कर में पड़ गये । किसे सरोज कहें ? दो चित्र थे । दोनों ही शेरवानी, चूड़ीदार पायजामे और साफ़े में थे ।

आखिर एक पर उँगली रख दी विनोद बाबू ने ।

शीला खिलखिला कर हँस पड़ी ।

“कहिये सरोज बाबू ! मैंने क्या कहा था ?”

“अच्छा, गलती हो गई मुझसे !” कुछ भेंपते हुए विनोद बाबू ने कहा । एक बार फिर चित्र देखा और अब की बार तुरन्त तमाम रहस्य ताड़ गये ।

“अरी पगली शीला ! अब समझा हूँ । तू बड़ी मक्कार होती जा रही है ।”

तीनों जोर से खिलखिला कर हँस पड़े ।

यही बात शीला ने माताजी को सुनाई तो खूब काफ़ी दिन तक हँसी रही इसी बात की । पद्मादेवी ने मुस्कराने हुए कहा, “आज तो तुमने अपने मामाजी के सामने अजायबघर पेश कर दिया ।”

जब कभी भी मामाजी आते तो चुपके से शीला आकर उसी फोटो को उठा लाती ।

दिन छोटे और रातें बड़ी होने लगीं । सर्दी के दिन आ गये मानो पढ़ाई के दिन आगये ।

बड़े दिन की छुट्टियों में सरोज लाहौर जा रहा था । शीला ने एक दिन आकर कहा, “क्या आप मुझे भी साथ ले चल सकते हैं ?”

“तुम क्या करोगी शीला ! तुम्हें अभी काफ़ी पढ़ना है । देखो फ़र्स्ट आना क्लास में ।” सरोज ने शीला की कमर थपथपाते हुए कहा ।

“और तुम्हें ...।”

“मुझे ज़रूरी काम है । तुम जानती ही हो कि मैं कहाँ जा रहा हूँ ?” उसी गम्भीरता के साथ सरोज ने कहा ।

“दस दिन में तो कोई खास पढ़ाई का नुकसान नहीं होता । इस

बार में भी आपके साथ ज़रूर चलूँगी।” ज़िद करते हुए शीला ने कहा।

“ज़िद नहीं करनी चाहिये शीला !” सरलना पूर्वक सरोज बोला।

“आप भी तो मेरी बात कभी नहीं मानते। इस बार मैं भी मानने वाली नहीं हूँ।” मुँह बनाकर शीला ने कहा और अकड़ कर एक ओर को मुड़ कर बैठ गई।

सरोज को शीला का आग्रह मानना पड़ा। रास्ते में आने वाले कितने स्टेशनों पर उतरे, कितनी-कितनी देर बाज़ार में घूमने फिरे। परन्तु सब निरर्थक, सब व्यर्थ। कहीं पर कुछ पता न चला। सरोज की यह यात्रा भी निष्फल ही सिद्ध हुई।

छुट्टियाँ समाप्त होने पर लौट आये ! फिर पढ़ाई शुरू हो गई।

एक दिन बैठे-बैठे सरोज कहने लगा, “शीला !”

“क्या बात है ?” सरोज की आँखों में आँखें डालकर शीला ने पूछा।

“यदि मेरी माँ जिंदा नहीं हैं तो वह भला मुझे स्वप्न में क्यों दिखलाई दिया करती हैं ? मैंने कई बार उसे स्वप्न में देखा है। वह मुझे ढूँढना चाहती हैं शीला !”

“यह आपके विचारों का प्रतिबिम्ब है, सरोज बाबू !” गम्भीरता पूर्वक शीला ने कहा। “आपने अपने विचारों में उनकी जो प्रतिमा बना ली है वही स्वप्न में आकर खड़ी हो जाती है।”

“यह मैं जानता हूँ, परन्तु कभी-कभी वह मेरे कान में आकर कहती हैं कि बेटा एक दिन मैं तुमसे ज़रूर मिलूँगी।” सरल भाव से सरोज ने कहा।

कई दिन निकल गये। आज शीला ने स्वप्न में अपनी माँ को देखा। उसने साफ़ देखा कि वह अपनी माँ से कह रही है, “माँ भूख...माँ भूख लगी है।”

बेटी खाना नहा कर खाना चाहिये।”

“माँ भूख...माँ भूख...लगी है।”

“ज़िद नहीं करते हैं बेटी ! नहा कर खाना खाना चाहिये। भले

बच्चे नहा कर ही खाया करते हैं। फिर तू तो मेरी रानी बिटिया है न ! बड़ी प्यारी है। यह देख तेरे लिये पेड़े लिये लेती हूँ।” और इतना कह कर माँ ने एक पेड़े वाले से एक आने के दो पेड़े ले लिये।

“देख बिटिया ! ये तेरे पेड़े हैं। पल्ले में बाँधे लेती हूँ। नहाने के बाद खा लेना।”

“माँ भूख...माँ भूख...लगी है।”

“अच्छा जल्दी-जल्दी चल...अरे ..अरे भीड़ आ रही है...बचो...बेटी...बेटी...बेटी...!”

“बस फिर माँ नहीं मिली सरोज बाबू !” शीला रो रही थी।

“कब देखा यह स्वप्न तुमने ?” सरोज ने पूछा।

“आज रात्रि में।” शीला ने कहा।

दिमागों के भारीपन को हल्का करने के लिए फिर दोनों सिनेमा चले गये।

दोनों को ही सिनेमा का तो न जाने कितना शौक था ? सिनेमा के ही प्रताप से मिस्टर सरोज अब एक कवि से उपन्यास-लेखक भी होते जा रहे थे। तरह-तरह के प्लाटों पर आप एक्सपेरिमेंट करने लग गये थे।

एक दिन शीला ने प्रस्ताव सामने रखा “अब इम्तहान तक सिनेमा नहीं जाया जायेगा।”

बेचारे सरोज बाबू को भी समर्थन करना पड़ा। इम्तहान तक के लिए सिनेमा की छुट्टी हो गई। कई अच्छे-अच्छे खेल आये, सरोज का दिल लुभा, उपन्यास-कला ने भी जोर पकड़ा, परन्तु पास किये हुए प्रस्ताव से बाहर कार्यवाही नहीं की जा सकती थी।

अब पढ़ाई का जोर काफी बढ़ गया। सरोज इतना कम पढ़ कर भी इतने अच्छे नम्बर पा जाता है, शीला इसी बात को हमेशा विचारा करती थी।

क्लास के और लड़के समझते थे कि सरोज न जाने कितना पढ़ता

होगा। परन्तु वास्तविक रहस्य को शीला ही जानती थी। शीला जानती थी कि सरोज क्या है ?

बिना पढ़े उसकी यह दशा थी। यदि वह थोड़ा-सा पढ़ ले, तो न जाने क्या ग़ज़ब करे ? एक बार पढ़ने से ही सरोज को आधी से ज्यादा पुस्तक ज़बानी याद हो जाती थी। उसकी स्मरण-शक्ति इतनी प्रबल थी कि बातें आपसे आप उसके दिमाग में उतरती चली जाती थीं।

ग़ज़ब की मैमोरी (याददाश्त) थी। बड़े-बड़े लेखकों पर अपने विचार इतनी सफ़ाई से प्रकट करता था कि प्रोफ़ेसर दंग रह जाते थे। बड़े-बड़े क्लिटिक्स जिन बातों को नहीं छू पाते थे, उनकी ऐसी विवेचना करता था कि एक दम मौलिक विचार सामने आ जाते थे।

ग़ज़ब का दिमाग था। शीला को गर्व था उसकी बुद्धिमत्ता पर।

: १२ :

इस्तहान का एक महीना रह गया।

“अब आपको पढ़ाई शुरू कर देनी चाहिये। देखिये अभी तक आपने कुछ भी नहीं छुआ। आखिर इस तरह कैसे काम चलेगा ?” शीला ने गम्भीर होकर कहा।

“तुम्हें अपनी चिन्ता तो है नहीं शीला ! और बस मेरी ही चिन्ता में मरी जाती हो। मैं कहे देता हूँ कि मैं इस वर्ष फ़र्स्ट आऊँगा। जितनी तुमसे मेहनत हो सके कर लेना।” मुस्कराते हुए सरोज बोला।

शीला यही तो चाहती थी। वह चाहती थी कि किसी प्रकार गुस्से में आकर वह पढ़ना शुरू कर दे। आज उसकी इच्छा पूरी हो गई। उसके दिल को कितनी राहत मिली सरोज के इन शब्दों से यह शीला ही अनुभव कर सकती थी।

“अजी देख लूँगी तुम किस तरह फ़र्स्ट आते हो ?” अकड़ कर बना-

बटी मुँह बनाते हुए शीला ने कहा । मानो वह सरोज को चेलेंज दे रही थी इस समय ।

सरोज मुस्करा दिया । और उसने मुस्कराते हुए ही शीला का चेलेंज स्वीकार कर लिया

एक दिन रात के बारह बजे शीला धीरे-धीरे सरोज के कमरे के पास चली आई । खिड़की से झाँक कर देखा तो सरोज पढ़ रहा था । उसका हृदय आनन्द से गद्गद् हो उठा । यही वह चाहती थी ।

मन में एक बार आया कि जब आई हूँ तो मिलती ही चली, परन्तु फिर विचारा कि नहीं, उसे मिलना नहीं चाहिये । पढ़ाई का क्रम जिसे बनने में इतना समय लगा है टूट जायेगा । उसे तोड़ना ठीक नहीं है ।

यदि वह उस समय उससे मिली तो उसका विचार अनिश्चित हो जायेगा ।—पुस्तक में जमा हुआ विचार विचलित हो जायेगा ।

यह ठीक नहीं था । शीला उलटे पैरों ही लौट आई । उसे विश्वास हो गया कि अब सरोज अवश्य क्लास में प्रथम आयेगा । कोई शक्ति नहीं है जो उसे प्रथम आने से रोक सके ।

इधर एक लड़का मद्रास यूनीवर्सिटी से भी यहाँ आया था । बड़ा तेज था वह भी क्लास में । साल भर के सभी टेस्टों में वह फ़र्स्ट आता रहा था । फिर प्रोफेसर्स का आईडिया भी उसने बना लिया था । वे सभी प्रभावित हो चुके थे उससे ।

कभी-कभी शीला को यह विचार हो जाता था कि कहीं वह ही फ़र्स्ट न आ जाये ? शीला की मेहनत तो असफल हो चुकी थी उसको परास्त करने में । इम्तहान पर हो यदि कोई विशेष बात हो जाये तो वह अलग चीज़ थी । परन्तु विश्वास के साथ वह कुछ नहीं सोच सकती थी ।

अब शीला बिल्कुल निश्चित थी । पढ़ाई ठीक-ठीक टाइमटेबिल बना कर करने लगी थी । नियमित रूप से खाना-पीना-सोना, पढ़ना और घूमना सब चल रहा था ।

सरोज का काम बिना टाइमटेबिल के ही हुआ करता था । उसने जीवन में कभी कोई टाइमटेबिल नहीं बनाया । एक दिन रात के एक बजे शीला को आ जगाया । “अभी से सो गई ?”

“क्यों क्या बजा है ?” शीला ने आश्चर्य चकित होकर पूछा ।

“कुछ बजा होगा, बजने से क्या हुआ ? परन्तु अभी तो नहीं सोना चाहिये था । हाँ तुमने कबीर के रहस्यवाद पर प्रश्न तैयार कर लिया ?”

“नहीं तो ।”

“नहीं तो !” सरोज ने मुँह बिचका कर कहा ।

“फिर किया क्या है आज तक ? केशव की कविता के कला-पक्ष पर ध्यान दिया । बिहारी की रसिकता पर कुछ याद किया । तुलसी की बहुज्ञता पर प्रश्न तैयार किया । सूर की सरसता...क्या कहूँ ? मैं जानता हूँ तुमने अभी कुछ नहीं किया । सब विषय अभी अधूरे ही पड़े हैं । इम्तहान क्या खाक दोगी ? बीस दिन इम्तहान के रह गये हैं और तुम अभी पुस्तकों का ही घोंटा लगा रही हो । इस समय तो केवल चुने हुए प्रश्नों पर ही तुम्हें विशेष रूप से ध्यान देना है । उन्हीं की विशेष रूप से स्टडी करनी चाहिए ।”

“क्या कहीं से पेपर मालूम कर लाये हो ? मुस्कराते हुए शीला ने पूछा ।

“और नहीं तो क्या ?” सरोज ने उत्तर दिया ।

“कहाँ से ?” ज़रा उत्सुक होकर शीला ने पूछा ।

“कहाँ से, कहाँ से ? वह तो हमें हमेशा ही आउट रहता है । आज तक जितने इम्तहान दिये हैं पेपर पहिले से ही पता थे ।” शीला की कमर थपथपाते हुए सरोज ने कहा । उसके कहने में दृढ़ विश्वास था ।

शीला को विश्वास नहीं हुआ । उसने इसे केवल मज़ाक मात्र समझा ।

“आप झूठ क्यों बोल रहे हैं ?” सरलता पूर्वक शीला ने पूछा ।

“भूठ नहीं बावली ! एक बार किताबों पर नज़र डालो और फिर पिछले तीन वर्षों के प्रश्न-पत्र देखलो, बस पर्चे सामने आ जाते हैं । यह है परचा आउट करने का तरीका । समझीं ।” कहकर सरोज हँस पड़ा ।

“इसी तरह के पर्चे लेकर शायद अब भी आये हो ।”

“और क्या तुमने समझा था कि मैंने आफ़िस की सील तोड़ दी है । उस प्रकार पर्चे आउट नहीं होते । अच्छा चलता हूँ अब । कुछ दिमाग़ थक-सा गया था । सोचा चलो तुम्हारा ही कुछ समय ख़राब करके अपना दिमाग़ ताज़ा कर आऊँ ।”

“ठहरिये चाय पीकर जाइयेगा ।”

“जी ! मैं रुक नहीं सकता । मुझे पढ़ना है । तुम्हें चाय की न जाने क्या लत है ? कोई समय तो होना चाहिये आखिर चाय पीने का ।” खड़ा होता हुआ सरोज बोला ।

“जी ! पढ़ने का भी तो कोई समय होना चाहिये ।” जब पढ़ने का कोई समय नहीं तो चाय का भला समय कैसे हो सकता है ।” मुस्करा कर बोली ।

“यह बात ग़लत है । पढ़ना मूड के ऊपर होता है और लोग साल भर से पढ़ रहे हैं और मुझे पढ़ते हुए अभी एक सप्ताह ही हुआ है ।”

“जी ! चाय भी मूड पर ही है । बस कुछ पूछियेगा नहीं । इस समय बड़े मौके का मूड आ रहा है । अगर आपने ज़रा भी हाँ-नाँ की तो तमाम मूड ख़राब हो जायेगा ।” मुस्कराती हुई शीला बोली ।

“वह तो मैं चाहता ही हूँ...”

“परन्तु वह इस समय नहीं । अभी हम दोनों स्वतन्त्र हैं । मैं अपनी मर्जी से चाय पीती हूँ और तुम मेरे इस समय मेहमान हो, तुम्हें चाय पीनी ही होगी ।” और इतना कहते-कहते उसने उठकर स्टोव जला कर उस पर केतली चढ़ा दी ।

चाय की शीला को लत थी । सब सामान वह अपने कमरे में ही

रखती थी। स्टडी-रूम में किताबों की जितनी आवश्यकता उसे रहती थी चाय के सामान की उससे किसी कदर कम नहीं थी।

थोड़ी ही देर में चाय तैयार थी और दोनों ने पीनी शुरू भी कर दी।

“तो अब आपने फर्स्ट आने का पूरा इरादा कर लिया। यही बात है न?” हँसकर शीला ने पूछा।

“यह बात थी तो नहीं, परन्तु हाँ अब जरूर है?” सरोज ने कहा।

“यह क्यों?”

“मैं नहीं समझता हूँ कि तुम फर्स्ट आ सकोगी। मुझे अपनी यूनी-वर्सिटी की शान रखनी है। एक दिन प्रोफेसर साहेब ने ऐसा कहा था।”

सरोज लौटने लगा, “हाँ तो जो सवाल मैंने बतलाये हैं, उन्हें यों ही मत टाल देना। उनमें से ही प्रश्न आयेंगे परीक्षा में।”

“मैं कल उन्हें जरूर देखूँगी।” शीला ने कहा।

सरोज चला गया।

कई दिन निकल गये। आजकल इम्तहान की तैयारी के लिए छुट्टियाँ हो रही थीं। यूनीवर्सिटी तो जाना नहीं होता। इसलिए शीला और सरोज की भेंट भी कई दिन से नहीं हुई थी। दोनों ही स्टडी में जुटे हुए थे।

आज शीला ने अपने टाइमटेबिल का नियम तोड़ दिया।

रात के एक बजे सरोज के कमरे पर गई। वह चुपचाप कमरे के पास पहुँच गई। फिर धीरे से खिड़की के शीशे से झाँका। शीला सन्न-सी रह गई। सरोज की हथेली उसके माथे पर रखी हुई थी और आँखों से टप-टप आँसू गिर रहे थे।

शीला चुपचाप बाहर ही खड़ी रही। थोड़ी देर बाद सरोज ने अपना सिर ऊपर उठाया और रूमाल से अपने आँसू पोंछ लिये।

एक किताब उठाई, खोली परन्तु शायद मन न लगने के कारण उसे उसी के स्थान पर रख दिया । फिर दूसरी किताब उठाई, तीसरी, चौथी, पाँचवीं किसी को भी नहीं पढ़ सका । वह पढ़ नहीं सका शायद ।
आखिर फिर चुपचाप आराम कुर्सी पर पीछे तकिया लगा कर बैठ गया ।

एक बार शीला के मन में आया कि उसे लौट जाना चाहिये ।—
परन्तु वह कारण तो अवश्य जानेगी रोने का । इसके जाने बिना तो वह अपना भी कोई कार्य नहीं कर सकेगी । सरोज शीला से कोई बात नहीं छिपायेगा ।—

जब उसे यह ख्याल होगा कि शीला ने उसे रोते देख लिया तो उसे...नहीं कोई बात नहीं । शीला और सरोज में कोई अन्तर नहीं । वे दोनों एक हैं । एक की कोई बात दूसरे से छिपी हुई नहीं है ।

वह निस्संकोच बतला देगे अपने हृदय की व्यथा को ।

सरोज शीला के कमरे के अन्दर जाने पर भी उसी प्रकार बैठा रहा । उसने आश्चर्य प्रकट नहीं किया उसके आने पर । केवल इतना ही कहा, “इस समय कैसे आई शीला ! यह समय तो तुम्हारे सोने का था ।”

“हां एक बार सो गई थी । फिर आँख खुल गई । किताब लेकर बैठी तो मन नहीं लगा । मैं जानती ही थी कि तुम इस समय तक सोते नहीं, तो यहाँ चली आई ।” सरलता पूर्वक कहा ।

“आज मैं बहुत रोया शीला ! तुमने अच्छा ही किया चली आई ।”

“क्यों ?” शीला ने पूछा । उसके मन की बात सरोज ने स्वयं ही कहनी शुरू कर दी । कितना साफ़ है उसका हृदय ? कितना निर्मल ?

“यों ही कोई खास बात नहीं थी । आज संध्या को मैंने एक दीन भिखारिन देखी थी । बेचारी गिड़गिड़ा कर पैसा माँग रही थी । मैंने उससे पूछ लिया कि क्या करेगी तू माई ?”

“पेट भरना है बेटा ! भूख लगी है ।” उसने कहा ।

रखती थी। स्टडी-रूम में किताबों की जितनी आवश्यकता उसे रहती थी चाय के सामान की उससे किसी कदर कम नहीं थी।

थोड़ी ही देर में चाय तैयार थी और दोनों ने पीनी शुरू भी कर दी।

“तो अब आपने फर्स्ट आने का पूरा इरादा कर लिया। यही बात है न?” हँसकर शीला ने पूछा।

“यह बात थी तो नहीं, परन्तु हाँ अब जरूर है?” सरोज ने कहा।

“यह क्यों?”

“मैं नहीं समझता हूँ कि तुम फर्स्ट आ सकोगी। मुझे अपनी यूनी-वर्सिटी की शान रखनी है। एक दिन प्रोफेसर साहेब ने ऐसा कहा था।”

सरोज लौटने लगा, “हाँ तो जो सवाल मैंने बतलाये हैं, उन्हें यों ही मत टाल देना। उनमें से ही प्रश्न आयेंगे परीक्षा में।”

“मैं कल उन्हें जरूर देखूँगी।” शीला ने कहा।

सरोज चला गया।

कई दिन निकल गये। आजकल इम्तहान की तैयारी के लिए छुट्टियाँ हो रही थीं। यूनीवर्सिटी तो जाना नहीं होता। इसलिए शीला और सरोज की भेंट भी कई दिन से नहीं हुई थी। दोनों ही स्टडी में जुटे हुए थे।

आज शीला ने अपने टाइमटेबिल का नियम तोड़ दिया।

रात के एक बजे सरोज के कमरे पर गई। वह चुपचाप कमरे के पास पहुँच गई। फिर धीरे से खिड़की के शीशे से झाँका। शीला सन्न-सी रह गई। सरोज की हथेली उसके माथे पर रखी हुई थी और आँखों से टप-टप आँसू गिर रहे थे।

शीला चुपचाप बाहर ही खड़ी रही। थोड़ी देर बाद सरोज ने अपना सिर ऊपर उठाया और रूमाल से अपने आँसू पोंछ लिये।

एक किताब उठाई, खोली परन्तु शायद मन न लगने के कारण उसे उसी के स्थान पर रख दिया । फिर दूसरी किताब उठाई, तीसरी, चौथी, पाँचवीं किसी को भी नहीं पढ़ सका । वह पढ़ नहीं सका शायद ।
आखिर फिर चुपचाप आराम कुर्सी पर पीछे तकिया लगा कर बैठ गया ।

एक बार शीला के मन में आया कि उसे लौट जाना चाहिये ।—
परन्तु वह कारण तो अवश्य जानेगी रोने का । इसके जाने बिना तो वह अपना भी कोई कार्य नहीं कर सकेगी । सरोज शीला से कोई बात नहीं छिपायेगा ।—

जब उसे यह ख्याल होगा कि शीला ने उसे रोते देख लिया तो उसे...नहीं कोई बात नहीं । शीला और सरोज में कोई अन्तर नहीं । वे दोनों एक हैं । एक की कोई बात दूसरे से छिपी हुई नहीं है ।

वह निस्संकोच बतला देगे अपने हृदय की व्यथा को ।

सरोज शीला के कमरे के अन्दर जाने पर भी उसी प्रकार बैठा रहा । उसने आश्चर्य प्रकट नहीं किया उसके आने पर । केवल इतना ही कहा, “इस समय कैसे आई शीला ! यह समय तो तुम्हारे सोने का था ।”

“हां एक बार सो गई थी । फिर आँख खुल गई । किताब लेकर बैठी तो मन नहीं लगा । मैं जानती ही थी कि तुम इस समय तक सोते नहीं, तो यहाँ चली आई ।” सरलता पूर्वक कहा ।

“आज मैं बहुत रोया शीला ! तुमने अच्छा ही किया चली आई ।”

“क्यों ?” शीला ने पूछा । उसके मन की बात सरोज ने स्वयं ही कहनी शुरू कर दी । कितना साफ़ है उसका हृदय ? कितना निर्मल ?

“यों ही कोई खास बात नहीं थी । आज संध्या को मैंने एक दीन भिखारिन देखी थी । बेचारी गिड़गिड़ा कर पैसा माँग रही थी । मैंने उससे पूछ लिया कि क्या करेगी तू माई ?”

“पेट भरना है बेटा ! भूख लगी है ।” उसने कहा ।

“तो चल मैं खाना खिला दूँ ।”

वह मेरे साथ चली आई । खाना खाकर चली गई । उस समय अचानक उस बुढ़िया के साथ मुझे अपनी माँ की याद आ गई । बस आपसे आप आँखों से आँसू बहने लगे ।”

“तुम्हारा मन बहुत कच्चा है सरोज ! देखो अब इम्तहान कितने नजदीक हैं । इस समय यह बातें तुम्हें भुला देनी चाहिये ।” शीला ने गम्भीरता पूर्वक कहा ।

“ठीक ही है शीला ! परन्तु जब माँ की याद में कभी आँसू आते हैं तो मैं उन्हें रोकना नहीं चाहता ।

खूब जी भर कर रोता हूँ शीला ! इससे मन का भारीपन कुछ दूर हो जाता है । जी हलका हो जाता है शीला !” एक अबोध बालक की तरह सरोज ने कहा ।

“अच्छा एक बार फिर कहो रानी !”

“तुम पगली हो गई हो । अब जाओ । अरे ! हाँ भूल गया ! माफ़ करना शीला ! अभी चाय तैयार करता हूँ तुम्हारे लिए ।” कहकर सरोज खड़ा हो गया ।

शीला थोड़ी-थोड़ी हँसने लगी । एक मंद मुस्कान बिखर गई । प्यार की आँखें लजीली हो गईं । दोनों ने मुग्ध-भाव से एक दूसरे की ओर देखा ।

चाय पीकर शीला चली गई ।

इम्तहान और पास आ गये ।

एक दिन संध्या समय सरोज आया “चलो शीला ! अरे ! अभी तो तुम तैयार भी नहीं हुई ।”

“आखिर कहाँ जाना है ?” शीला ने पूछा ।

“कल इम्तहान है न !”

तब क्या अभी से सीट पर चलकर बैठने का इरादा कर लिया है आपने ?” मुस्कराते हुए शीला बोली ।

“जी नहीं !”

“फिर ।”

“आज सिनेमा देखने चलेंगे ।”

“क्या सिनेमा ?” आश्चर्य चकित होकर शीला ने कहा ।

“हाँ ।”

“लेकिन मुझे तो पढ़ना था ।”

“आज !...बस हो लिया...चलो तैय्यार हो जाओ । अब कुछ याद नहीं होगा । जो कर लिया, वही बहुत काफी है ।” सरोज ने कहा ।

“जी नहीं ।”

“जी नहीं क्या ? मैं इम्तहान से तीन दिन पहले पढ़ना छोड़ देता हूँ । कल परसों इसीलिये नहीं आया कि कहीं तुम्हारा नुकसान न हो ।” हँसते हुए सरोज बोला ।

“आपने बड़ी कृपा की ।” शीला भी मुस्कुरा रही थी ।

“परन्तु आज यह कृपा नहीं होगी ।” सरोज बोला !

“कोई क्या कहेगा भला ! तुम ही विचार करो । कल इम्तहान होगा और आज आप सिनेमा चलने को कह रहे हैं । माताजी ही भला क्या कहेंगी ?” गम्भीर होकर शीला बोली ।

“माताजी कुछ नहीं कहेंगी । वह हमें जानती हैं । और किसी की मैं बिन्ता नहीं करता ।” सरोज ने दृढ़तापूर्वक कहा ।

“अच्छा मैं माता से पूछ लेती हूँ ।” शीला ने कहा ।

“जी नहीं । अ...।”

“तब क्या बिना पूछे ही चलने का इरादा है ?”

“आप ज्यादा अकलमंदी मत छांटिये । मैं कह रहा हूँ तैय्यार हूँ जाइये, मैं माताजी से पूछ लेता हूँ ।” और वह अन्दर माताजी से पूछने चला गया ।

“आखिर सिनेमा जाना ही पड़ा ।” कहकर शीला ने नई साड़ी बाँध ली और वह सिनेमा के लिए तैयार हो गई ।

सिनेमा से लौटने पर सरोज ने कहा, “शब सीधी जाकर सो जाना । इस समय किताब पढ़ने की जरूरत नहीं । इस समय का पढ़ा लिखा पहले पढ़े लिखे को भी भुना देगा !”

“जो आज्ञा महाराज !” दोनों हँस दिये ।

“इम्तहान शुरू हुआ और खत्म भी हो गया । शीशा और सरोज दोनों ने ही पर्चे अच्छे किए । दोनों को सन्तोष था अपने काम पर, किसी भी प्रकार की दुविधा नहीं थी किसी के मन में ।

छुट्टियाँ शुरू हो गई ।

“आज मैं कानपुर जा रहा हूँ और वहाँ से इलाहाबाद चला जाऊँगा ।” सरोज ने शीला से विदा होते हुए कहा ।

“तब फिर कितने दिन में लौटियेगा ?” शीला ने पूछा ।

“लौटना कहाँ होगा शीला ?” गम्भीर मुख-मुद्रा से सरोज ने कहा ।

“क्यों ?”

“पहिले तो प्रयाग के कुम्भ की खाक छाननी है । फिर वहाँ से लखनऊ जाऊँगा । लखनऊ से हरिद्वार होता हुआ देहली जाऊँगा ।

मैंने पूरा छुट्टी भर का प्रोग्राम बना लिया है शीला ! इस बार देखता हूँ भगवान् की क्या इच्छा है ?”

“परन्तु आप भला उन्हें पहिचान किस प्रकार पायेंगे । आप कहते हैं कि जब आप चार वर्ष के थे तभी...”

यह ठीक है शीला, परन्तु मन नहीं मानता । वह कहता है कि तू भटकता फिर । अपनी माँ की खोज में भटकने में भी मुझे एक आनन्द की प्राप्ति होती है । उस आनन्द का वर्णन नहीं कर सकता शीला !”

शीला एक ठंडी साँस लेकर रह गई । मन में विचार आया कि वह भी साथ चलने के लिए कह दे, परन्तु वह सरोज के कंधों पर व्यर्थ का भार नहीं लादना चाहती थी । फिर उसे आशंका थी कि इस प्रकार

जाने की शायद पद्मादेवी भी उसे अनुमति न दे सकें । उनकी इच्छा के विरुद्ध वह कोई कार्य कभी भी नहीं करती थी ।

“तो आप कल ज़रूर चले जायेंगे ?

कुम्भ इस वर्ष इलाहाबाद में हो रहा है ?”

“नहीं तो !”

“अभी तो आपने कहा ।”

“ग़लत कह गया हूँगा शीला ! मेरा दिमाग़ कुछ ठिकाने नहीं है । कुम्भ तो हरिद्वार में ही है ।” सरोज ने कहा ।

“तो क्या आप हरिद्वार में मुझे भी...।”

“हाँ, हाँ वहाँ तो पिताजी और माताजी दोनों ही आयेंगे । उन्हीं के साथ तुम भी चली आना ।”

“वैसे तो माताजी भी कह रही थीं चलने के लिये ।” शीला ने कहा ।

“इससे अच्छी और क्या बात हो सकती है ?” सरोज बोला ।

सरोज चला गया ।

शीला स्टेशन तक पहुँचाने गई ।

पत्र लिखने के लिये सरोज ने वायदा कर लिया था । वह प्रति सप्ताह एक पत्र अवश्य ही लिखा करेगा, चलते समय उसने शीला को आश्वासन दिया ।

: १३ :

पद्मा भक्ति की ओर अपना मन लगाना चाहती है परन्तु भक्ति की ओर भी मन नहीं लगता । मन में शांति किसी समय भी नहीं होती । उसके अन्दर एक ऐसी अशांति ने वास कर लिया था कि जिसको कोई बाहरी चीज़ दूर नहीं कर सकती थी । जीवन के किसी पहलू में कुछ

स्थान रिक्त हो गया था । उस रिक्त स्थान की पूर्ति करना उसके लिए असम्भव था और उस रिक्त स्थान की स्मृति उसे क्षण-क्षण विचलित कर देती थी ।

शीला ही आजकल उनके जीवन का आधार है । उसके बिना एक पल भी ठहरना उसके लिये मुश्किल हो जाता है । वह उसे एक क्षण के लिए भी अपनी आँखों से ओझल नहीं करना चाहती थी ।

कभी जब पिछले जीवन की याद आ जाती थी तो पद्मा न जाने कितनी देर तक बैठकर रोती रहती थी । आँसू बन्द ही नहीं होने में आते थे । गत जीवन की न जाने कितनी भूलें साकाररूप में उसके सामने आ उपस्थित होती थीं ।

विचार आता है उसने जीवन में क्या किया ?—

“पति, जिन्हें देवता की तरह पूजना चाहिये था, जिनकी सेवा करनी चाहिए थी...उनको धन के झूठे अभिमान में फँसकर उसने ठुकरा दिया । बार-बार बुलाने पर भी उनके पास तक नहीं गई । उनको अपना ही न सकी ।

फिर यदि गई भी तो उस समय जब उनके प्राण पखेरू उड़ चुके थे, उनकी जीवन-लीला समाप्त हो चुकी थी, वह इस संसार और इसकी माया को पद्मा के लिए छोड़कर विदा हो चुके थे । पद्मा ने यह पाप किया । इस पाप से मुक्ति केवल मृत्यु ही दिला सकती थी । पद्मा का शरीर काँप उठता था यह विचार आते ही ।

अब पति की मूर्ति को पूजने से आखिर लाभ ही क्या है ? जिसे जीवन भर सताया और मानसिक कष्ट दिया उसकी मूर्ति के सामने मस्तक टिकाने से क्या लाभ ? यह तो कोरा दिखावा मात्र है ।

परन्तु वास्तव में यह दिखावा नहीं था । पद्मा का मन कहता था,

“अब पछनाये क्या होत है,

जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत !—

मैं वास्तव में पापिनी हूँ। मैंने उनके प्यार को ठुकराया। उन्हें हृदय में स्थान नहीं दिया।—

इतने पर ही तो अन्त नहीं हुआ...मैंने उनके प्यार का भी अपमान किया; मैंने ..नहीं...नहीं मैंने उनका अपमान किया ! उनकी आत्मा को भी कष्ट पहुँचाया। मैं अंधी हो गई थी उस समय।—

मैं माफ़ी नहीं चाहती भगवान् ! मैं दण्ड चाहती हूँ, मुझे दण्ड मिलना चाहिए।

बेचारी ललिता ने उनकी सेवा की। बीमारी के दिनों में उनकी देखभाल की।—

सुना है कि उनकी दवा में अपनी टूटी-फूटी दो चार चीज़ों को भी बेच कर लगा दिया। अपनी सामर्थ्य भर सब कुछ किया। उसने वह किया जो एक पतिव्रता देवी को करना चाहिए।—

उस देवी को मैंने पुलिस के हाथों देकर सजा करा दी। उसे पाँच वर्ष के लिये कठिन कारावास में भिजवा दिया। पैसे के अभिमान ने मुझे मानव से दानवी बना दिया था। मेरे अन्दर की इन्सानियत को खो दिया था।—

उस नीच डाक्टर ने भी धन के लोभ में कह दिया कि, 'हाँ, पंकज को ज़हर दिया गया है।' उसने लिख दिया, साबित कर दिया।—

उफ़ ! काँप उठी थी उस समय बेचारी ललिता। उसके नेत्रों का बहता हुआ पानी रुक गया था।—

उसने एक शब्द भी अपनी सफ़ाई में नहीं कहा। सीधी जेल चली गई और उसके वियोग में उसका वृद्ध पिता भी अपने प्राणों से हाथ धो बैठा। मेरे पाप की सीमा नहीं है। फिर भी मैं नहीं समझती कि भगवान् मुझे क्यों दण्ड नहीं देता।—

मैं इन पापों से छुटकारा नहीं पा सकती। ललिता का पिता अपनी पुत्री के वियोग में तड़प-तड़प कर मर गया।

यह सब पाप किसने किया ? मैंने ही किया यह सब पाप ।

इसी निर्मम हृदय वाली पद्मा ने । इसी पिशाचिनी ने किया ।—
और मैं अभी तक ज्यों-की-त्यों बैठी हुई हूँ । नहीं जानती अभी
जीवन में और क्या-क्या पाप मुझे करने है !—

आज बेचारी ललिता का कहीं पता नहीं । न जाने बेचारी कहाँ
और किस दशा में होगी । यदि मिल जाये तो उसके चरण चूम लूँ ।—

लज्जा के कारण, बुद्धि आने पर भी मैं एक बार उसे जेल में देखने
नहीं गई । मैं मोह में कितनी अग्री हो गई थी उन दिनों ।—

जेल से छूटने पर वह लोकनगर नहीं आई । लोकनगर में उसका
था ही क्या जिसके लिये आती । वृद्धि पिता की मृत्यु की उसे सूचना
मिल चुकी थी ।—

“मेरे जीवन की जलन शांत नहीं हो सकती ।”

पद्मा का इन्हीं विचारों में न जाने कितना समय निकल जाता
था । कभी-कभी रात्रि पद्मा को करवट बदलते हुए ही कटती थी ।
नींद नहीं आती थी ।

चित्त को चैन नहीं था । अब वह शायद जान गई थी कि आराम
उसके लिए नहीं है । अपने घर के परिवार में पति को ठहराया यह सत्य

नहीं किया जा सकता था । उन्हें दूर करने के अवसर वह जीवन से खो
चुकी थी ।

शायद अब वह समझने लगी थी कि जीवन की शांति स्वतन्त्रता में
भी नहीं है । उसने स्वतन्त्रता के लिये पति की अवहेलना की थी ।
तिरस्कार किया था पति का । यह चित्र उसकी आँखों से धुल नहीं
सकता था । यह स्वप्न आज जड़ होकर हृदय में बस चुका था । एक
तीखे तीर की तरह घुस चुका था ।

पद्मा का जीवन आज बिल्कुल बदल गया था ।

आज पद्मा इन्हीं विचारों की उलझन सुलझा रही थी कि शीला दोड़ी हुई अन्दर आई ।

“एक बात बताऊँ माताजी, एक बात ..”

“क्या परीक्षा-फल निकल गया ?”

“हाँ ।” शीला बहुत खुश थी ।

“क्या नतीजा रहा ? कौन फ़र्स्ट आया ?”

“सरोज बाबू !” कहकर शीला ने मुख नीचा कर लिया ।

पद्मा ने मन-ही-मन कहा, चलो एक वर्ष की बात और रह गई । फिर शीला का वह विवाह करेगी ।

विनोद भैया को हरदम शीला के विवाह की ही चिंता रहती है । वह समझते हैं कि शीला के लिये सुयोग्य वर मिलने में कठिनाई होगी ।

सरोज बहुत अच्छा लड़का है । मुझे पसंद है ।

“और तुम्हारा क्या रहा शीला रानी ?”

“मैं तो थर्ड आई हूँ अम्मा ! मैंने पहिले ही कहा था कि मेरा एक पेपर खराब हो गया है ।”

“यह बहाना अच्छा मिला ।” पद्मा ने मुस्करा कर कहा । “परन्तु ठीक है ।”

“बहाना नहीं करती हूँ अम्मा ! इस वर्ष फ़ाइनल में देख लेना कौन फ़र्स्ट आता है ।” मुँह बनाते हुए शीला बोली ।

पद्मा हँस पड़ी ।

“अच्छा जा सरोज के घर भी उसकी माता जी और पिताजी को ख़बर दे आ । वह भी शायद बाट देख रहे होंगे रिजल्ट की ।” पद्मा ने शीला को प्यार से अंक में भरते हुए कहा ।

“जी !” मुँह हिलाकर शीला ने कहा ।

“जी क्या ? बेटी ! परीक्षा-फल का सभी को इतन्ज़ार रहता है ।”

“सरोज बाबू के रिजल्ट के लिये भी चिंता । माँ उनसे बाज़ी

मारना तो लोहे के चने चबाना है। बिना कुछ पढ़े लिखे इनका यह हाल रहता है, अगर कहीं पढ़ना शुरू कर दें तो जाने क्या हाल हो ? विचित्र प्रकार से पढ़ते हैं।

एक दिन रात को माँ दो बजे मुझे आकर जगा दिया।”

“क्यों ?”

“सवाल बतलाने के लिये !” हँस कर बोली।

“तो क्या पर्चा मालूम था उसे ?” पद्मा ने पूछा।

“यही तो ! जो-जो सवाल बतलाये, वही पर्चे में सामने रखे थे !” मुस्कराती हुई शीला ने कहा।

“उस दिन मुझे विश्वास नहीं हुआ और पर्चे करते समय उन्हीं सवालों को देखकर पछताना पड़ा कि मैंने विश्वास क्यों नहीं किया था ?

माँ उनकी मूर्ख ही ग़ज़ब की है।”

“बहुत अच्छा दिमाग है सरोज का, मैं जानती हूँ।” पद्मा बोली।

“रटने का तो नाम नहीं जानते।”

“अच्छा जो तू उनके घर अगर नहीं जाना चाहती तो नौकरी...।”

“नहीं माँ, वहीं होकर आ रही हूँ।” प्रफुल्लित होकर शीला ने कहा।

“तो सूचना दे आई ?” पद्मा ने पूछा।

“जी !”

“अच्छा तो सरोज को भी तार कर दो।”

“अभी जाती हूँ।”

कहकर शीला बिजली की तेज़ी से जाकर कार पर बैठ गई।

सरोज के पास से प्रति सप्ताह एक पत्र आता था। अभी तक उसका काम पूरा नहीं हुआ था। वह जिस उद्देश्य से देशाटन कर रहा था वह काफी कठिन था।

शीला को तो कोई आशा नहीं थी कि काम कभी पूरा होगा भी, परन्तु वह सरोज के काम में रुकावट नहीं डालना चाहती थी। यों चाहे

वह सरोज के सामने कुछ भी कह दे, परन्तु फिर भी वह सरोज से बहुत भय मानती थी। उसका साहस कभी भी उसकी इच्छा के मार्ग में बाधा उपस्थित करने का नहीं होता था।

इलाहाबाद, कानपुर, लखनऊ इत्यादि जगहों पर होकर अब सरोज हरिद्वार जाने का इरादा कर रहा था। यात्रा के दौरान में शीला का तार मिला, जिसमें पास होने की सूचना दी गई थी।

कुम्भ के दिन पास आ गये। बड़ा जबरदस्त मेला लगने वाला था। तमाम पंचपुरी में एक अजीब चहल-पहल थी। रोड़ियों का स्थान मेले के लिए चुना गया था। मेले का बाजार वहीं पर लगा था और अधिकांश यात्री भी वहीं ठहरे थे।

सरोज भी हरिद्वार पहुँच गया। यहाँ पर पहुँच कर सरोज ने शीला को पत्र लिखा। पद्मा पहिले से ही तैयारियाँ कर चुकी थी कुम्भ में जाने की।

शीला को सरोज का पत्र मिला तो उसे लिये हुए वह माँ के पास पहुँची।

“सरोज का पत्र है ?” पद्मा ने पूछा।

“जी !” शीला ने उत्तर दिया।

“अब तो वह हरिद्वार पहुँच गया होगा।” पद्मा ने पूछा।

“वहीं से तो आया है पत्र।” अन्दर-ही-अन्दर मन में गुदगुदी लिए शीला ने कहा।

“अच्छा तो जाओ उसे तार कर दो कि परसों हमें स्टेशन पर मिले। परसों शाम को छः बजे हमारी गाड़ी हरिद्वार पहुँचेगी।” पद्मा ने कहा।

“बहुत अच्छा ! हाँ लेकिन सरोज बाबू के यहाँ से भी तो सब जाने का इरादा कर रहे हैं।” शीला ने पद्मादेवी को सूचना दी।

“कब ?” पद्मा ने पूछा।

“यह तो मैं नहीं कह सकती।” शीला बोली।

“तब कोई बात नहीं। तुम तार कर आओ और उसके घर पर सूचना भी दे आना अपने जाने की। यदि उन लोगों को भी उसी गाड़ी से जाना होगा तो स्टेशन पर मुलाकात हो जायगी।”

“बहुत अच्छा।” कह कर शीला चली ही थी कि पद्मा बोली, “और हाँ, यह भी पूछती आना कि वह लोग किस दिन रवाना होंगे?”

“बहुत अच्छा।” कह कर शीला चली गई।

शीला चली गई! पद्मा को चलने का इन्तजाम करना था। बहुत-सी चीजें बाज़ार से मंगानी थीं। पद्मा ने अपनी यात्रा का सब सामान जुटा लिया। सब चीजें तैयार हो गईं। शीला ने आकर देखा तो बिस्तरे वगैरह सब बँधे पड़े थे। सब सामान तैयार था। वह देख कर आश्चर्य चकित रह गई।

“सब तैयारी करली माँ तुमने तो।”

“हाँ बेटी शाम को चार बजे जाती है गाड़ी।”

“और दो वज भी गये।”

“हाँ।”

स्टेशन पहुँच कर दो सेकिंड क्लास के टिकिट खरीद लिये गये। भीड़ काफी थी गाड़ी में। आदमी पर आदमी पड़ा हुआ था। दूसरे दिन सुबह नौ बजे हरिद्वार स्टेशन आया। सरोज पहिले से ही वहाँ पर खड़ा हुआ था। छः बजे पहुँचने वाली गाड़ी आज सात बजे पहुँची।

“बहुत लेट हो गई गाड़ी।” सरोज ने कहा।

“कितनी स्पेशल ट्रेनें चल रही हैं! उन्हीं के कारण समय पर चलने वाली गाड़ियों को भी लेट होना पड़ता है बेटा!” पद्मा ने जवाब दिया।

ठहरने का इन्तजाम सरोज ने पहिले ही कर रक्खा था। पद्मा को कनखल ठहरना अधिक पसंद था। इसलिये सरोज ने कनखल में टैन्टों

का इन्तज़ाम किया था। वहाँ स्नान काफ़ी खुला हुआ था और भीड़ भी इतनी अधिक नहीं थी।

गंगा-किनारे पर टेन्ट पड़े हुए थे। बड़ा ही सुन्दर स्थान था। पद्मा को घूमने का शौक नहीं था। यहाँ तक कि वह हरकी पौड़ियों पर नहाने को भी जाना पसंद नहीं करती थी। वहीं कनखल की ही गंगा में स्नान कर लेती थी।

एक दिन शीला ने सरोज से कहा, “सरोज बाबू यहाँ पर एक काँगड़ी-गुरुकुल भी तो है।”

हाँ ! लेकिन वह ज्वालापुर में है।”

“वह कितनी दूर है यहाँ से ?”

“बहुत दूर नहीं है, यही तीन मील होगा ज्यादा-से ज्यादा।”

“सुना है बहुत सुन्दर जगह है।”

“हाँ अच्छी जगह है। पिताजी और माताजी तो वहीं पर ठहरा करते हैं।” सरोज ने कहा। “वे लोग तो हर साल ही यहाँ पर आते हैं इस अवसर पर।”

“हाँ याद आया ! पिताजी तो आर्यसमाजी हैं न ?” शीला ने तुरन्त कहा।

“हाँ ! पहिले मुझे भी वहीं पर दाखिल कराने की बात सोच रहे थे, परन्तु माताजी नहीं मानीं। इसीलिए हमें बरख दिया गया।”

“सुनते हैं वहाँ से पूरी शिक्षा पाने पर ही घर जा सकते हैं। बीच में छुट्टियाँ नहीं होतीं।” शीला ने कहा।

“छुट्टियाँ तो होती हैं परन्तु घर नहीं जाते।” सरोज ने उत्तर दिया।

“अच्छा आज वहाँ चलेंगे।” शीला बोली। “मेरी इच्छा हो रही है कि मैं उस विद्यालय को देखूँ।”

“हाँ आज तो मुझे भी जाना है वहाँ।” सरोज ने कहा।

“क्यों ?” शीला ने पूछा।

“काँगड़ी-गुरुकुल का वार्षिक उत्सव हो रहा है। उसी के अवसर पर आज एक कवि-सम्मेलन भी होने वाला है वहाँ।” मुस्करा कर सरोज ने कहा।

“और आपको निमंत्रण मिला है उस कवि-सम्मेलन में आने का।” शीला ने प्रसन्नता पूर्वक पूछा। “तब तो आप मंच पर बैठने की तैयारी में हैं।”

“यही बात है शीला ! आज देखना वहाँ क्या रंग जमाता हूँ।”

संध्या को दोनों काँगड़ी गुरुकुल गये।

दूसरे दिन लक्ष्मण-भूने का द्वार रहा। वहाँ जाते समय पद्मादेवी भी साथ थीं। तीनों ने ऋषिकेश से आने के लिये एक ताँगा कर लिया। काफी भयानक रास्ता था। टेढ़ी-मेढ़ी पथरीली राह पर ताँगा जा रहा था। चारों ओर वृक्षों का घना जंगल था।

फिर भी बड़ी मौज का दिन रहा। शाम को वापस लौटे।

“बेटा पिताजी नहीं आये अभी तुम्हारे ! कब तक आने को लिखा है ?”

“आपसे नहीं बतलाया शीला ने। वे लोग कल आ रहे हैं माताजी ! उसी ट्रेन से आयेगे जिससे आप आई थी।” सरोज ने बतलाया।

“ठहरेंगे तो हमारे ही पास न ! यहाँ कनखल में बहुत सुन्दर जगह देखकर तुमने डेरे लगवाये हैं। बड़ा प्यारा दृश्य रहता है सामने।” प्रसन्नता पूर्वक पद्मादेवी ने कहा।

“जी नहीं, वह तो ज्वालापुर में ठहरा करते हैं।” सरोज ने उत्तर दिया।

“तो वहीं पर इन्तज़ाम किया है क्या उनके ठहरने का ?”

“जी हाँ।”

“कहाँ पर ?”

“काँगड़ी-गुरुकुल में।” सरोज ने बतलाया।

“यहाँ कोई अच्छी जगह है काँगड़ी-गुरुकुल बेटा ?” पद्मा ने पूछा ।

“बहुत अच्छी जगह है माँ !” शीला बीच में ही बोल पड़ी । “बहुत ही सुन्दर है । वहाँ के ब्रह्मचारी पीली-पीली धोती पहिन कर जब निकलते हैं तो बहुत सुन्दर लगते हैं । कितना भोलापन होता है उनमें माँ, बस क्या कहूँ ? मुझे तो बहुत पसन्द आई वह जगह ।” सरल स्वाभाविक स्वर में शीला ने कहा ।

“तुम कब गये थे ?” पद्मा ने पूछा ।

“परसों ।” शीला बोली ।

“और मुझे ले ही नहीं गये ।” हँसते हुए पद्मा ने कहा ।

“परसों वहाँ पर कवि-सम्मेलन था माँ ! उसमें गये थे ।”

“अच्छा ! समझ गई । सरोज को उन लोगों ने निमंत्रित किया होगा । यही बात है न ।” पद्मा ने कहा ।

सरोज ने सिर नीचा कर लिया और शीला ने धीरे से कह दिया “जी !”

संध्या को घूमने के लिये निकले तो रोड़ियों के बाजार में जा फँसे नागों का आज जलूस निकलने वाला था । गंगा का इधर से उधर जाने वाला पुल रोक दिया गया था । पुलिस का दोनों ओर प्रबन्ध था । कोई इधर-से-उधर या उधर-से इधर नहीं आ जा सकता था ।

भीड़ में शीला परेशान हो गई । सरोज को भी कोई उपाय नहीं सूझा कि आखिर किस तरह गंगा को पार किया जाये । देर काफ़ी होती जा रही थी और भीड़ कम होने का नाम नहीं लेती थी । आदमियों के ठट्टे-के ठट्टे जुड़ते चले जा रहे थे ।

आखिर परेशान होकर सरोज शीला से बोला, “चलो किसी दूकान पर बैठ कर कुछ आराम ही कर लें । यहाँ कब तक खड़े रहेंगे ? इतनी भीड़ को चीर कर रास्ता बनाना नितान्त असम्भव है ।”

“परन्तु माताजी जो इन्तजार कर रही होंगी ।” शीला ने उत्सुकता पूर्वक कहा ।

“यही तो मैं भी सोच रहा हूँ ।” सरोज बोला ।

“तब फिर करना क्या चाहिये ?”

“चलो बाहर निकल चलें और पीछे की तरफ से ताँगा लेकर ज्वालापुर की ओर से निकल कर कनखल पहुँच जायेंगे । बस यही एक रास्ता है । वरना इस रास्ते का तो पता नहीं कब खुले ।”

“इतना चक्कर ?”

“और नहीं तो क्या करें यहाँ कब तक खड़े रहेंगे ?”

“क्या इतनी देर तक भीड़ बनी ही रहेगी ?”

“कौन जाने ? बनी ही रही तो क्या कर लेंगे ?”

“अच्छा चलो तुम्हें गंगा में तैरा कर ले चलूँ ।” सरोज ने मुस्करा कर कहा । “तुम बस जमकर मेरी पीठ पर बैठ जाना और मैं तैर कर पार हो जाऊँगा ।”

“जी ! और वहाँ से भीगे हुए कपड़े पहिने ही डेरोँ तक जायेंगे । देखने वाले भला क्या कहेंगे ?” गम्भीर होकर शीला बोली ।

“कहेंगे क्या ? थोड़ी बहुत देर हँस-हँसा लेंगे । इससे ज्यादा तो और उनके कुछ बस में है नहीं ।” सरोज बोला ।

“इसे आप कुछ समझते ही नहीं ।”

“बिलकुल नहीं ।”

दोनों एक दूसरे की ओर देख कर हँस दिये ।

“अच्छा सुनली बस । अब बाहर निकलने का प्रयत्न कीजिये । यहाँ अधिक इन्तजाम नहीं करना है । माताजी को फिक्र हो रही होगी ।” शीला ने कहा ।

“जो आज्ञा महारानी जी !” कह कर सरोज ने आँख फेरते हुए मुस्करा दिया और फिर दोनों बाहर की ओर चल दिये ।

ऊपर के रास्ते से होते हुए एक ताँगा पकड़ ही लिया ।
आज खूब थक गये थे दोनों । बड़े मजे की नींद आई ।

: १४ :

ललिता पागल हो गई थी ।

पद्मा ने ललिता को पाँच वर्ष के लिए जेल भिजवा दिया था । ललिता पागल स्त्री के रूप में हरिद्वार में फिरा करती थी । कभी-कभी हरिद्वार छोड़ कर चली जाती थी, परन्तु फिर कुछ दिन बाद हरिद्वार में ही आ जाती थी ।

यहाँ के दूकानदार उसे सब जानते थे । कभी-कभी खाने को भी दे देते थे । ललिता कभी किसी से कुछ माँगती नहीं थी ।

इधर कुछ दिन से उसका स्वास्थ्य बिलकुल खराब हो गया था । ज्यों-ज्यों स्वास्थ्य साथ छोड़ता था त्यों-त्यों पागलपन भी कुछ कम-सा दिखलाई देने लगता था ।

और पागलों की दशा से उसकी दशा कुछ भिन्न-सी रहती थी । कभी-कभी घण्टों बैठ कर कुछ सोचती रहती थी । लोग उसे पैसे देते थे तो वह उनके पैसे उन्हें लौटा देती थी । वह किसी का पैसा लेना पसंद नहीं करती थी ।

हर की पौड़ियों से स्टेशन की ओर आते हुए बाजार में एक घुमाव आता है । इसी के पास एक कुआँ बना हुआ है । इस कुएँ की सीढ़ी पर आमतौर से ललिता बैठी रहा करती थी । यह जगह जाने क्यों उसे बहुत प्रिय थी ।

कभी-कभी लोगों ने इसे गाते भी सुना था । बड़ा प्यारा गाती थी ।

इसके गाने को लोग बहुत पसंद करते थे । इसीलिए बहुत से सज्जन ललिता का पगली होते हुए भी ध्यान रखते थे । यहाँ के कुछ दूकानदार तो उसके खाने और कपड़े का भी ध्यान रखते थे ।

गाने की जगह इसकी वास्तव में कुएँ की मन नहीं थी। कभी घूमती हुई, अपने पागलपन में ही, बाजार से ऊपर भीमगोड़े की ओर चली जाती थी और वहीं एक पत्थर पर बैठ कर एकांत में गंगा के किनारे गाती थी:

दो हृदय मिल जाँय री सखि !

दो हृदय मिल जाँय ।

प्यार के कोमल-करों से

हृदय-अवगुंठन-लजीले

री सखी ! खुल जाँय ।

दो हृदय मिल जाँय ।

गाते-गाते उसका गना यकायक रुँध जाता था और आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगती थी। रोती रहती थी उसी जगह वैठी हुई ! चाहे जितने आदमी उसके पास खड़े हों, परन्तु वह रोना बन्द नहीं करती थी। उसे किसी की लज्जा नहीं थी, किसी का भय नहीं था, किसी की चिन्ता नहीं थी।

वह केवल अपने को देखती थी। किसी भी आदमी से उसका कुछ सरोकार नहीं था। कोई दूसरा आदमी भी उसे नहीं छेड़ता था। पगलियों को बच्चे तंग किया करते हैं, परन्तु ललिता को बच्चे प्यार करते थे, उसके पास जाकर बैठ जाते थे और वह स्नेह से उनकी कमर सहलाती थी।

हरिद्वार के दूकानदारों ने देखा था कि एक लड़की उसे रोज़ाना कुछ-न-कुछ खाने के लिए लाया करती थी। यदि कभी वह नहीं मिलती थी तो वह लड़की बड़ी परेशान हो जाती थी। इधर-उधर खोजती थी ललिता को। तमाम बाजार छान डालती थी ललिता के लिए। और उसे खाना खिलाये बिना उसे चैन नहीं पड़ता था।

ललिता का गाना बहुत प्यारा लगता था इस लड़की को। कभी-

कभी तो वह उसकी गोद में ही जाकर बैठ जाया करती थी। प्यार करती और कराती थी उससे।

कहती, “माँ गाना क्यों बन्द कर दिया तुमने।” और फिर सुनाने का आग्रह करती थी।

ललिता कुछ जवाब नहीं देती थी और केवल उसके मुख की ओर देखने लगती थी। एक टक देखती रहती थी बहुत देर तक। मानो वह उसमें कुछ खोजने का प्रयास कर रही हो।

माँ गाओ वह गाना ! तुम रोने क्यों लगती हो जाने ? रोया मत करो। तुम्हें रोती देख कर मुझे डर लगने लगता है।” वह बच्ची ललिता से कहती और प्रेम-भाव से उससे सट कर बैठ जाती।

ललिता ने मानो कुछ सुना ही नहीं। वह किसी के कहने से न गाती थी, न रोती थी। कान तो मानो उसके थे ही नहीं। उसे जो रुचता था, वह करती थी। उस पर किसी का कोई प्रतिबन्ध नहीं था, वह मुक्त थी।

कभी-कभी रोती-रोती चुा हो जाती और जोर से खिलखिला कर हँस पड़ती थी एक पगली की तरह। उसके पागलपन का भास भी उसके हँसने को छोड़ कर उसकी अन्य किसी हरकत से नहीं होता था।

इस समय वह लड़की उसके पास नहीं ठहर सकती थी। उसका तमाम शरीर काँप उठता था। वह धीरे से उठ कर एक ओर को खिसक लेती थी और फिर बहुत देर तक उसके पास आने का सोहस नहीं होता था।

ललिता को वास्तव में कोई समझ नहीं पाता था। वह पागल तो थी नहीं। साधारण पागलों जैसी उनकी स्थिति नहीं थी। अच्छी भी उसे नहीं कहा जा सकता। उसकी हँसने की प्रक्रिया को देखकर तथा उसके रहन-सहन और चलन को देख कर उसे साधारण स्त्री की संज्ञा देना भी उचित नहीं।

हँसने के थोड़ी देर बाद वह फिर गाना शुरू कर देती:

अंक में लेकर तरंगें
 प्यार को, मंडरा रही हैं,
 गा रही हैं,
 लाज से मुमका रही हैं ।
 क्यों न भर कर दो हृदय
 अपने उदधि में इस मिलन को
 चिर मिलन बन जाँय !
 प्रेम-कलिका प्रेम-अधरों
 पर थिरक खिल जाँय ।
 दो हृदय मिल जाँय री सखि !
 दो हृदय मिल जाँय ।

वह लड़की फिर पास आजाती । फिर उसका भय दूर होकर न जाने कहाँ चला जाता । उसे ललिता में फिर कुछ अपनत्व और ममत्व दिखलाई देता और वह फिर उससे सट कर बैठ जाती ।

कभी-कभी ललिता इस लड़की से बात किया करती थी, “तू किसकी लड़की है बेटी ?”

“ब्राह्मण की ।” वह लड़की स्नेह से कहती ।

फिर चुप हो जाती थोड़ी देर के लिए । कई बार उसके मुँह का रंग बदल जाता । फिर पूछती, “तेरी माँ का क्या नाम है बेटी ?”

“मेरी माँ मर गई माँ ।” माँ का नाम सुन कर बच्ची के नेत्र डब-डबा आते और वह हँसासी-सी हो जाती ।

“कब ?” बड़े आश्चर्य से ललिता पूछती । यह पूछते समय ललिता का चेहरा भी उतर जाता ।

“कई वर्ष हुए ।” वह कहती ।

“भूठ... बिलकुल भूठ... वह अभी मरी नहीं बेटी, ज़िन्दा है ।”

एक दृढ़ विश्वास के साथ ललिता कहती । मानो उसे सब कुछ पता है । उसने कहीं देखा है उसकी माँ को ।

“नहीं, वह मर गई माँ ! मेरे सामने मरी थी, मेरे सामने जलाई गई ।”

“अच्छा उसका नाम क्या था ?” फिर ललिता पूछती ।

“रामकली ।” वह बच्ची कहती ।

“फिर भूठ...बिलकुल भूठ...उसका नाम मैं बतलाऊँ.....मैं बतलाऊँ...अरे तू चुप क्यों हो गई ? क्या बेटी को भी माँ की याद आती है ? बिलकुल भूठ । बेटी माँ को याद नहीं करती ।” और बस वह चुप हो जाती ।

“तुम माँ की बात मत कहा करो माँ ।” इतना कह कर लड़की रोने लगती थी । उसकी आँखों से अश्रु-धारा बह निकलती ।

ललिता का बना बनाया स्वप्न बिखर जाता था । उसकी कल्पनायें और विचारधारायें अन्धकार में खो जातीं । उसका शिथिल मस्तिष्क जो कुछ सोचने का विचार करता वह उसे एक दूटा स्वप्न प्रतीत होता । लड़की को वहीं पर छोड़ कर वह खड़ी हो जाती थी और ऊपर की ओर गंगा के किनारे-किनारे न जाने कहाँ चली जाती । कई दिन तक फिर हरिद्वार की सड़कों पर दिखलाई नहीं देती । वह लड़की नित्य उसे खोजती परन्तु कहीं पता न चलता ।

फिर कुछ दिन पश्चात् हरिद्वार में कहीं-न-कहीं पर दिखलाई दे जाती, और वह लड़की भी उसे खोज ही लेती । इस लड़की को भी ललिता को खोजे बिना चैन नहीं पड़ता था ।

एक दिन बैठे-बैठे ललिता कह बैठी, “क्यों बेबो तेरी माँ का नाम ललिता नहीं था ? देख भूठ मत बोलना नहीं तो मैं रो पड़ूँगी ।”

लड़की अवाक् रह गई । उसने ललिता की बात का कोई उत्तर नहीं दिया ।

“तेरी माँ अभी जीवित है, वह मरी नहीं है ।” ललिता ने कहा ।

‘नहीं’ माँ वह मर चुकी ।’ बच्ची दृढ़ता पूर्वक बोली ।

“क्यों ?”

“मैंने अपनी आँखों से देखा था लोगों को उसे उठाकर ले जाते हुए, फिर चिता पर रखते हुए और क्षार होते । तुम क्या कहती हो माँ, वह मर गई । वह जीवित नहीं और मेरी माँ का नाम ललिता नहीं राम-कली ही था ।”

ललिता फिर वहाँ से चल देती । अधिक देर एक जगह रहना उसे पसंद नहीं था । सीधी उसी कुँए पर पहुँच जाती । बैठी रहती कुछ देर चुप्चाप । फिर उठकर खड़ी हो जाती । एक-एक दूकानदार के पास जाती और पूछती, “क्यों भय्या तुमने देखी हैं क्या ?”

“नहीं माँ, हमने नहीं देखी ।” वह कहता ।

फिर दूसरे के पास जाती और वही प्रश्न करती ।

“क्यों भय्या तुमने देखी है क्या ?”

“नहीं माँ हमने नहीं देखी ।” वह दूसरा भी वही उत्तर देता ।

फिर तीसरे के पास जाती । इसी तरह सारा बाजार छान डालता और फिर लौटकर उसी पुरानी जगह पर आकर बैठ जाती । ऐसा ही वह आमतौर पर करती थी । दूकानदार भी उस की इस बात को जानते थे और इसीलिए बड़े प्यार से उत्तर देते थे स्नेह के साथ । परन्तु इसका राज किसी को पता नहीं था ।

तमाम बाजार वाले उसको प्यार करने लगे थे । कोई भी दुतकारता नहीं था । फिर दुतकारने का वह काम भी नहीं करती थी ।

पाँच-पाँच दिन तक इन्हीं सीड़ियों पर बाजार वालों ने उसे बिना कुछ खाये-पिये चुपचाप बंटे देखा था । किसी का पैसा वह नहीं लेती थी । किसी का खाना नहीं लेती थी ।

फिर भला क्यों उसे कोई दुतकारता ? क्यों उसे कोई परेशान करता ?

आज ललिता फिर भीमगोड़े के सामने गंगा के किनारे बैठी हुई

श्लिला

अपना प्रिय गाना गा रही थी। उसे किसी भीड़भाड़ की चिन्ता नहीं थी।

कुम्भ का मेला पूरे जोर पर था इन दिनों। सरोज और शीला हर-की पोड़ियों पर खड़े थे। शीला बोली, “इतने दिन यहाँ आये हो गये और भीमगोड़े की तरफ आप एक दिन भी नहीं चले। सुना है काफ़ी रमणीक स्थान है।”

“तुमने कहा ही कब चलने के लिये।” सरोज बोला।

“फिर अब तो कह रही हूँ। क्या दस्तावेज़ लिखना होगा वहाँ जाने को कहने के लिए?” मुस्कराते हुए शीला बोली।

“अच्छा ! हाँ चलो। वह तो बहुत नजदीक है।...तुमने उस दिन क्यों नहीं देखा था भला?” सरोज बोला।

“किस दिन?” शीला ने पूछा।

“जिस दिन ऋषीकेश गये थे। पहिला स्टेशन सुरंग के बाद भीमगोड़े का ही तो था। वही पर बाँये हाथ की ओर पहाड़ की जड़ में भीमगोड़ा है।”

दोनों उस ओर चल दिये। पहुँचने में भी देर नहीं लगी बहुत शीघ्र दोनों भीमगोड़े पर पहुँच गये।

“बड़ा सुन्दर स्थान है यह तो।” देखकर शीला बोली।

“अरे वहाँ भीड़ कैसी हो रही है गंगा-किनारे? कोई गा रहा है शायद! चलो सुने शीला इसे तो फिर भी देख लेगे।” गंगा-किनारे की भीड़ को देखकर सरोज ने कहा और दोनों ही उस ओर को चल पड़े जहाँ गङ्गा-किनारे कोई गा रहा था।

“वाह जी ! कविता जरा करनी क्या आ गई है कि जिधर भी किसी ने ऊँ-ऊँ की और आप फिसले।” मुस्कगते हुए शीला ने कहा।

“अच्छा देर मत कर। यह बातें तो फिर भी सुन लूँगा।”

“अच्छा आप जाइये मैं नहीं जाती।” बीच सड़क पर रुक कर शीला बोली।

“रूँठ गई बस ।” हँसते हुए सरोज ने कहा ।

“और नहीं तो क्या ? गाना मेरी बातों से भी अच्छा है आपके लिए ?”

“अरे ! भाई ! माना कि तुम्हारी ही बातें अच्छी हैं, परन्तु सुनने को तो रोज़ मिल जाती हैं ।” हँसते हुए सरोज बोला ।

दोनों वहाँ पर पहुँच गये । गाने वाली ललिता थी । थोड़ी देर में उसने गाना बन्द कर दिया और वहाँ से उठकर भीड़ में कहीं खो गई ।

“बड़ा सुन्दर गाती थी ।” शीला ने कहा ।

“हाँ ।” सरोज बोला ।

“मेरा जी तो चाहता था कि इस गाने वाली से मिला जाय ।”

“चल बावली ! अब कह रही है यह बात । मन तो मेरा भी कर रहा था लेकिन मैं तो इसी लिये टाल गया कि फिर तू कहेगी कि तुम्हें ऐसी ही बेकार की बातें सूझती हैं ।” लालायित-सा सरोज बोला ।

“अच्छा चलो कहीं फिर मिल जायेगी ।” शीला बोली ।

“बहुत मुश्किल है शीला ! देखती नहीं हो कितनी भीड़ है पता नहीं किधर चली गई ।”

“चलो फिर भी देखते हैं । शायद मिल ही जाये ।”

भीड़ बहुत थी । भीड़ को काट कर तेज़ी से आगे बढ़ना बड़ा मुश्किल था । खोजने का थोड़ा-बहुत प्रयत्न किया परन्तु भला फिर वह कहाँ मिलती है ? दोनों ने भीमगोड़े से हरकी पीड़ी तक खोजने का प्रयास किया और फिर गंगा के बीच वाले घाट पर भी खोजा परन्तु कहीं पर भी उसका पता न चला ।

“गाती बहुत सुन्दर थी ।”

बस इसी बात को दुहराते हुए दोनों अपने डेरे पर चले आये । आज की भीड़-भाड़ में काफी थक गये थे दोनों ।

“अच्छा अब मैं जाता हूँ शीला !”

“जी नहीं चाय पीकर जाना होगा ।” शीला ने ज़रा प्रेम भरी सस्ती के साथ कहा ।

“फिर वही चाय ! वहाँ सब मेरा इन्तज़ार कर रहे होंगे ।” सरोज बोला ।

“करने दो ।” आँखें फिरा कर कहा शीला ने । एक मधुर आज्ञा थी शीला के शब्दों में ।

“बेटा सरोज ! शीला को अकेले चाय अच्छी नहीं लगती ।” पद्मा ने बाहर से अन्दर आते हुए हँसकर कहा ।

शीला शर्मा कर चाय का इन्तज़ाम करने बाहर चली गई ।

: १५ :

देख शीला ! इतनी भीड़ में हम नहीं जायेंगे ।”

“क्यों ?” शीला ने पूछा ।

“क्यों-क्यों कर रही है । देखती नहीं कि कितनी भीड़ है ? जब अभी से भीड़ का यह हाल है तो जब नागों की सवारी आयेगी तब क्या हाल होगा ? देखती नहीं हो आदमी पर आदमी गिरा जा रहा है । कहीं तिल धरने को भी जगह नहीं है । सारी ज़मीन पट गई है आदमियों से ।”

“यह जाने वाले भी तो आदमी ही हैं ।” शीला ने कहा ।

“हैं, परन्तु फ़ायदा भी आखिर क्या ? मूर्ख हैं ये सब जो इतनी भीड़ में कुचले जाने के लिए आगे बढ़ रहे हैं ।”

“जी ! तो भला कुम्भ में ही आने से क्या फ़ायदा ?” शीला ने पूछा ।

सरोज चुप हो गया । आखिर कहाँ तक बहस करता । परेशान होकर कहना भी पड़ा, “भीड़ में डर मेरे लिये नहीं, तुम्हारे लिये है । और तुम्हारे साथ मैं भी फँस जाऊँगा । समझीं । अब जैसा चाहो वैसा करो मैं अधिक बहस नहीं करता ।”

“जी ! समझी ! यानी इसका मतलब दूसरे शब्दों में यह हुआ कि आप अकेले ही जाना चाहते हैं; जो कि बिल्कुल असम्भव है...समझे आप ; यह असम्भव है, असम्भव ।” अकड़ कर शीला ने कहा ।

अब सरोज बाबू क्या कहते ? शीला के असम्भव शब्द के सामने उनकी क्या चल सकती थी ? सब चीं-पटाक बेकार थी ।

जाना सरोज को जरूर था और शीला मानती नहीं, तो आखिर बेचारा करे क्या ? कहना ही पड़ा दबे शब्दों में, “चलिये श्रीमती शीला देवी जी ! आप भी चलिये । जब आप ज़िद कर रही हैं तो ज़िद का फल चखने के लिए उद्यत हो जाइये, परन्तु एक दम तुरन्त ।”

“जी नहीं ! देखते नहीं कितनी भीड़ है ! आदमी से आदमी पिसा जा रहा है । कहीं पर तिल धरने के निये भी जगह नहीं है । इतनी भीड़ में आप आखिर जाकर क्या कीजियेगा ?” कह कर शीला मुँह फेर कर धीरे से मुस्करा दी । “इतनी भीड़ में जाना मैं मूर्खता समझती हूँ । कोई अवलमन्दी का काम नहीं है यह ।”

“हाँ-हाँ सुन लिया वस । लगीं हमारा ही उपदेश और हमी को सुनाने । चलो अगर चलना है तो जल्दी करो ?” खड़ा होता हुआ सरोज बोला ।

“अगर चलना है—से आपका क्या मतलब है ? आखिर मैं पूछती हूँ कि क्या आप मेरे बिना जा सकते हैं ? क्या आप ..।”

“कैसा पागलपन है यह शीला ? हम कह रहे हैं देर हो रही है और आप लेक्चर झाड़ने में लगी हुई हैं । आखिर कब तक होगी...।”

“बस-बस और ज्यादा लम्बी स्पीच न दीजिये । तैयार हो जाइये; देर हो रही है ।”

“देर मैं कर रहा हूँ या तुम ।” सरोज बोला ।

“आखिर मैं भी तो यही पूछती हूँ कि देर मैं कर रही हूँ या तुम !”

“अरे ! कैसी बातें हो रही हैं ?” पद्मा ने अन्दर आकर कहा ।

दोनों चुप-चाप खड़े हो गये । पद्मा के सामने एक ने भी एक शब्द नहीं कहा । दोनों मौन थे ।

“क्या बात थी सरोज ?” पद्मा ने पूछा ।

“कुछ नहीं माताजी ! शीला देर कर रही थी चलने को ।”

“नहीं माताजी ! मैंने भला कब देर की ? देर तो सरोज बाबू ही कर रहे थे ।” सरोज की बात काटकर शीला ने कहा ।

पद्मा हँस पड़ी । “इतने बड़े हो गये तुम दोनों और अभी तक बच्चों वाली बातें नहीं गईं । लेकिन कहाँ जाओगे आज ? देख नहीं रहे हो कितनी भीड़ है ?”

“हाँ माताजी ! भला यही तो मैं पूछ रही थी कि कहाँ जाओगे आज ? देखिये कितनी भीड़ है बाजारों में । कहीं पैर रखने को भी जगह नहीं है । और फिर जब सवारी निकलेगी तो भला क्या हाल होगा ?”

मौका पाकर शीला कह गई । सरोज चुप-चाप सुनता रहा । मन-ही-मन मुस्कुरा रहा था कि शीला अब बड़ी मक्कार होती जा रही है । बात को लाकर माताजी के सामने फँसा दिया । डर भी रहा था कि कहीं ऐसा न हो कि माताजी जाने के लिये मना कर दें ।

इतने में पद्मा बोली, “शायद सरोज बेटा सवारी देखने जाने को कह रहा होगा । अच्छा चले जाओ ! लेकिन सँभल कर जाना । और देखो भीड़ से दूर रहना । भीड़ के अन्दर घुसने की आवश्यकता नहीं है । कहीं किसी ऊँचे स्थान पर खड़े हो जाना ।”

“हाँ माताजी, यही तो मैं भी कह . ।”

“चल ! मक्कार हो गई है अब तू । जाओ बेटा सरोज ! सँभल कर जाना ।” शीला की बात को बीच ही में काटते हुए पद्मा ने कहा । और फिर आप डेरे से बाहर चली गईं ।

“माताजी भी तुम्हारी ही सी बात कहती हैं ।” शीला रोना-सा मुँह बना कर बोली ।

“जी ! देखती नहीं हो कितनी भीड़ हो रही है ? आदमी से आदमी ।”

“अच्छा अब चलना भी है या यों ही समय नष्ट करते रहोगे ।”

“मैं तो आया ही इसलिये हूँ ।” सरोज बोला ।

दोनों रवाना हो गये । यहाँ से रोड़ियों तक जाने के लिये तो ताँगा मिल गया । रोड़ियों के पास जाकर ताँगे से उतरना पड़ा ।

“क्यों जी यदि दूसरी ओर से नहर का पुल पार करके सीधे हरकी पैड़ियों पर पहुँच जाते तो कैसे रहते ? वहाँ किसी जगह आराम से बैठ कर तमाशा देखते ।” शीला ने आँख फिराते हुए कहा ।

“जी ! नहीं । माफ़ कीजिये । तमाशा बैठ कर नहीं देखा जाता । अगर बैठना ही था तो डेरे पर से यहाँ तक ही आने की क्या आवश्यकता थी । संध्या को जाकर मैं सब कुछ सुना ही देता आपको ।” सरोज बोला ।

“जी सुनना और देखना बराबर ही हैं आपकी नज़र में । सुन तो आप कलकत्ते में भी सकते थे । अखबारों में यहाँ का रत्ती-रत्ती वृत्तांत छपता है ।”

‘हाँ तुम्हारे लिये तो वह भी काफी था ।’

“फिर वही बात । यानी आप मुझे कुछ समझते ही नहीं । अच्छा जाइये मैं नहीं जाती ।” एक सोडावाटर वाले की दूकान पर कुर्सी खिसकाते हुए बोली । “मैं यहीं बैठती हूँ । जब तमाशा देखकर लौटें तो मुझे साथ ले लें ।”

सरोज चुपचाप खड़ा रह गया । शीला की मक्कारी देख कर मन-ही-मन मुग्ध होकर मुस्करा रहा था ।

“अरे भाई ! देखते क्या हो ? दो बोतलें खोल डालो ।” सरोज बोला ।

“कोनसी बोतलें खोलूँ सरकार ?”

“जो ताज़ी हों ।”

“सरकार सभी ताजी हैं।”

“अच्छा तो जो पानी तुम्हारा खास होता हो वही बोतलें खोल दो !”

“जी सरकार आप ही बतला दीजिये। यह तो अपनी-अपनी पसंद है। कोई औरेंज पसन्द करता है तो किसी को विमटो का शौक है ? एक लेमनेड पीता है तो दूसरा खारी सोडे के सामने दूसरी पर हाथ ही नहीं रखता। आप जो भी कहें सो खोल दूँ।”

“अच्छा भाई तू लेमनेड ही खोल दे।” सरोज ने कहा।

सोडे की बोतलें पीकर दोनों आगे बढ़े। थोड़ी दूर आगे चल कर शीला बोली, “क्यों जी ! अगर आप थक गये हों तो ज़रा कहीं आराम कर लो।”

“इसी लिये तो मैं...।”

“नहीं-नहीं...मेरा यह मतलब हरगिज़ नहीं है। मैं तो उसी तरह से ताज़ा बनी हुई हूँ जिस तरह से उस वक्त थी जब चली थी। मैंने तो आपके लिये पूछा है।” कहकर शीला ने दूसरी ओर को मुँह कर लिया।

“अच्छा चलो एक-एक बोतल और पियेंगे।”

“चलिये ! मैं तो आपके साथ हूँ। जैसा-जैसा भी आप कहेंगे करती जाऊँगी। चलिये यदि आपको पानी ही पीने और पिलाने की इच्छा हो रही है तो मुझे कोई ऐतराज़ नहीं।”

दोनों मुस्करा कर सोडे की दूकान में चले गये। थोड़ी देर यहाँ पर भी दूकान वाले के साथ चख रही और फिर आगे बढ़ गये। भीड़ के साथ रगड़ते-भगड़ते आगे बढ़ रहे थे।

आज भीड़ की कोई हद नहीं थी। एक पैर आगे बढ़ाना मुश्किल था। कंधों-से-कंधे छिल रहे थे। चलता-चलता यदि कोई एक बार गिर गया तो उसका उठकर खड़ा होना असम्भव हो जाता था।

बाज़-बाज़ रैला तो इतना तेज़ आता था कि सरोज और शीला को साथ-साथ रहना भी मुश्किल हो जाता था। दोनों ने एक दूसरे का

हाथ पकड़ा हुआ था और भीड़ से झगड़ रहे थे । अचानक शीला को वह बात याद आ गई । सरोज बाबू । ऐसे ही कुम्भ मेले पर अपनी माँ से मैं छूट गई हूँगी । देखते नहीं कितनी भीड़ है । भला एक बार दूसरे से अलग होकर कहीं मिला जा सकता है ?”

“बड़ा मुश्किल है शीला ।”

सरोज को आज फिर माँ की याद आ गई । मा की याद आते ही उसका विचार जाने कहाँ चला जाता था । कुछ और आगे बढ़े तो सेवा-समिति का आफिस आ गया । वहाँ पर कितने ही खोये हुए बच्चे रो रहे थे, कितने चुपचाप बैठे थे और यहाँ तक कि बूढ़ी और जवान-जवान औरतें भी बहुत-सी बैठी थी । बेचारियों को अपने स्थान पर पहुँचना कठिन था ।

शीला को बड़ा आश्चर्य हुआ । सरोज से बोली, “क्यों सरोज बाबू क्या ये बड़ी-बड़ी औरतें भी मेले में ही खोई हुई हैं ?”

“हाँ ।” सरोज ने कहा ।

“ये अपने डेरे पर नहीं जा सकती ?”

“यदि जा सकती तो भला यहाँ पर क्यों बैठी रहनी । बेचारी गाँव की स्त्रियाँ हैं । ज़िदगी में पहली बार शहर देखा है । इन्हें तो यहाँ की हर दिशा एक समान ही लगती है ।”

“क्यों गाँव की ही क्यों हैं ? सभी तो गाँव की नट्टी मालूम होती । शहर की भी हैं और काफी अच्छे-अच्छे घराने की मालूम होती हैं ।” शीला ने उस ओर देखते हुये कहा ।

“शहर की स्त्रियों में से ये वे हैं शीला, जिन्होंने पर्दे से बाहर कभी कदम नहीं दिया । घरों में रहना ही इनका काम है । फिर भला यहाँ पर एक बार अपने आदमियों से अलग होकर ये किस प्रकार उन्हें पा सकती हैं ।”

“हम हिन्दुओं की खास तौर से कितनी ही स्त्रियाँ इन मेलों में गुम हो जाती हैं, कितने ही बच्चे हमेशा के लिए अपने माँ बाप के प्यार से

वंचित हो जाते हैं और कितनी ही बुढ़िया यह धर्म कमाने के अपराध में अपना बुढ़ापा खराब कर लेती हैं । स्वर्ग में जाती-जाती ये नर्क में गिर पड़ती हैं ।”

“वाकई सरोज बाबू इनमें बेचारी बुढ़िया भी कई हैं ।”

“हाँ ।”

दोनों और आगे बढ़ गये । किसी प्रकार बड़ी मुश्किल से उस काठ के बने हुए पुल पर पहुँच गये जो रोड़ियों को शहर से मिलाता था । यह पुल नावों का बना हुआ था ।

जिस समय काठ के पुल पर पहुँचे तो लोगों में शोर मचा हुआ था ‘एक तरफ हो जाओ, सवारी आ रही है, सवारी आ रही है ।’

सरोज शीला का हाथ पकड़ कर पुल से आगे की तरफ बढ़ गया और एक ऊँचे से टीले पर पुनः से थोड़ी दूरी पर दोनों जाकर खड़े हो गये ।

सवारी सामने आ गई । बड़े-बड़े सुन्दर हाथी और उनके पीछे घोड़े और पालकिया थीं । हाथियों के ऊपर सुनहरी अम्बारियाँ थीं और उनके दाँतों में सोने के चमकदार कड़े पड़े हुए थे ।

घोड़ों की भूलें भी बड़ी शानदार थीं और सबसे शान की चीज़ थी वह थी पालकी ले चलने वाले कहारों की वर्दी । सिर पर पल्लेदार चुती हुई टोपियाँ, चिकन के कुर्ते और तक्ररीबन सभी के मुँह में बनारसी पान का बीड़ा दबा हुआ था ।

यह नाँगों की सवारी थी । लोग देख-देख कर हाथ जोड़ रहे थे । कुछ लम्बे लेट कर प्रणाम कर रहे थे । कोई अपने-बच्चे को उनकी ओर करके आँखें बन्द किये अर्पण कर रहा था । शायद भगवान् और नाँगों दोनों से ही वे एक साथ आशीर्वाद चाहते थे । एकाग्र मन से वे भगवान् के सामने नतमस्तक थे ।

हजारों आदमी उनके सामने सिर झुका रहे थे, बड़े-बड़े बाबू पत्ति सहित ज़मीन पर सिर रख रहे थे । कितनी आस्था थी उन लोगों में ?

सवारी चली गई फिर तो और भी मजेदार सीन रहा । हज़ारों स्त्री-पुरुषों ने उनके पैरों की छुई हुई मिट्टी उठाकर अपने अपने-बच्चों का तिलक किया । किसी किसी ने तो बच्चे का सारा मुँह ही मिट्टी से भर दिया । और बच्चे ने भी होठों पर लगी मिट्टी को चाटना शुरू कर दिया वह मिट्टी उन लोगों ने अपने भी मस्तक पर लगाई ।

“देखा कुछ पागलपन ।” सरोज शीला से बोला । “यह है हमारे देश की धर्मान्धता, मूर्खता ?”

“इसमें भला पागलपन क्या है ?” शीला ने पूछा ।

“क्यों ? इस तरह से मिट्टी बच्चों के मुँह पर पोतना भी कोई धर्म है । यह सरासर बेवकूफी नहीं तो और क्या है ? और उस पर भी इन पाखण्डियों के पैरों की छुई हुई मिट्टी ।

ये सभी धोखेबाज़ लोग हैं । ढोंगी हैं । ढोंग बनाकर दुनिया को छलते हैं । मूर्ख बनाते हैं ।” कुछ आवेश में आकर सरोज ने कहा । नागों के इस जलूस को देखकर जहाँ लाखों आदमी ऐसे थे कि जिनके हृदय तथा श्रद्धा और अनुकम्पा से भर उठे थे वहाँ उस हुजूम में एक व्यक्ति सरोज ऐसा भी था जिसके मन में यह सब पाखण्ड और मूर्खता देखकर क्रोध और दया का आविर्भाव हुआ । धूर्त नागों पर जहाँ एक ओर उन्हें क्रोध आया वहाँ दूसरी ओर अनजान लोगों पर दया आई ।

“जी ! जिन लोगों में श्रद्धा नहीं होती वे ऐसे ही कहा करते हैं ।” शीला ने कहा । कुछ ठहर कर शीला फिर बोली “तमाम दुनियाँ एक सी नहीं होती । यदि इन फ़कीरों में हज़ार बदमाश हैं तो एक साधु भी अवश्य मिल जायेगा ।”

“बस एक से हो गया दुनियाँ का उद्धार ।” सरोज ने ज़रा क्रुद्ध भाव से कुड़कर कहा । उसे मांसिक क्लेश हो रहा था इन साधुओं का यह ढोंग देखकर ।

“एक-एक ने ही दुनियाँ का उद्धार किया है । राम अकेले ही तो थे, कृष्ण भी अकेले थे, गौतम भी अकेले थे, फिर आपके ऋषि दयानन्द

का ही साथ देने वाला शुरू में कौन था ? कितने लोगों ने उन पर पत्थरों की वर्षा नहीं की, उन्हें ज़हर भी पिला दिया ।

परन्तु क्या तुम कह सकते हो कि वे अकेली शक्तियाँ कुछ कम थी ?” शीला ने सरोज के सामने अपना प्रमाण प्रस्तुत किया ।

“वे ईश्वर की विशेष शक्तियाँ हुआ करती हैं शीला ! जो कभी-कभी जन्म लेती हैं । वे जन्म से ही कुछ अजीब हुआ करती हैं । इस प्रकार के ढोंग बनाने के लिये वे कभी नहीं आते । उन्हें काम करना होता है । वे इस प्रकार का पाखण्ड नहीं रचतीं ।”

“जी ! आप अब पूरे आर्यसमाजी होते जा रहे हैं ।” शीला मुस्करा कर बोली ।

“अब होता जा रहा हूँ ।” सरोज ने आश्चर्य से कहा । “क्या पहिले नहीं था मैं । अब तुम्हें क्या विशेषता दिखलाई दे रही है ?” सरोज ने आश्चर्यचकित होकर पूछा ।

“थे ज़रूर परन्तु अब पूरे होते जा रहे हो ।” शीला मुस्कराकर बोली ।

“सो कैसे ?” सरोज ने पूछा !

“यों कि पहिले ठीक बात मान लिया करते थे और अब हर बात में ज़िद करने की तुम्हारी लीयत रहती है ।” गम्भीरतापूर्वक शीला ने कहा ।

“अच्छा !” सरोज ने मुस्कराते हुए कहा ।

“अच्छा क्या ?” शीला ने अपनी हँसती हुई आँखें एक ओर को फिरा लीं । “क्या सच नहीं कह रही हूँ मैं ?”

इस समय तक पुल रुका हुआ था । रोड़ियों की ओर के आदमी सभी जलूम के पीछे-पीछे हर की पौड़ियों पर जाना चाहते थे । पुल बहुत छोटा था और भीड़ बहुत अधिक । फिर पुल यदि भर कर चलता तो टूटने का भी खतरा था । पुल काफ़ी कमज़ोर था ।

यह पुल नावों के ऊपर बना हुआ था । इसीलिए स्वयं-सेवकों और

पुलिस के सिपाहियों ने भीड़ को एक दम रोक दिया था। जलूस के पीछे-पीछे वेतहाशा भागती हुई भीड़ को आगे नहीं बढ़ने दिया गया।

दूसरा खतरा यह भी था कि कहीं हर की पौड़ियों पर इतनी भीड़ न हो जाये कि नहाने के लिए लोगों में लड़ाई-झगड़ा होना शुरू हो जाये, क्योंकि आज तो हर आदमी पहिले नहाना और पर्व मनाना चाहता था।

आज था पर्व का दिन और सभी एक साथ डुबकी लगा कर पाप-मुक्त होना चाहते थे। सबके पाप-मुक्त होने के लिये वहाँ स्थान का अभाव था। इसलिए भी इस नाव के पुल पर पुलिस और स्वयंसेवकों ने रोक लगा दी थी।

मतलब यह है कि पुल के एक किनारे पर जो रोड़ियों की तरफ का था एक बल्ली रख दी गई जो कि काफी नीची थी। इसी के नीचे से होकर पुल पर का रास्ता हो गया। दस बल्ली के लग जाने से भीड़ एक दम भाग कर नहीं जा सकती थी।

ऐसा करने से पुल पर चलने वालों की तादाद और हर की पौड़ियों पर पहुँचने वालों की तादाद तो कम हो गई परन्तु जो जाने के लिए कोशिश कर रहे थे उनकी तादाद बढ़ गई और पुल के इस किनारे पर भीड़ का ठट्ठा लग गया।

एक तूफ़ान-सा मच गया। लोग आगे को बढ़ना चाहते थे। धक्कों पर धक्के लगने लगे। बूढ़े, बच्चे और स्त्रियों की भीड़ में भिच-भिच कर बुरी दशा होने लगी।

पुलिस और स्वयंसेवकों को भय हुआ कि कहीं पुल के सिरे पर रक्खी हुई बल्ली न टूट जाये? यदि ऐसा हो गया तो अनर्थ हो जायेगा। कितने ही आदमी जान से हाथ धो बैठेंगे और पुल तो जरूर ही टूट जायेगा। इतनी भीड़ को सँभालने के लिये पुल बिलकुल नाकाफी और कमजोर था।

यहाँ पुलिस को सख्ती से काम लेना पड़ा। धक्के दे-दे कर लोगों

को पीछे हटाया गया । माना कि उन पर काफी टीका-टिप्पणी की गई परन्तु उन्होंने अपना काम नहीं छोड़ा और भीड़ को आगे बढ़ने से रोग दिया ।

कुछ कांग्रेसी आदमी भी थे । दशा को देखकर और तो बेचारों से कुछ कहते नहीं बना, परन्तु हाँ इतना तो एक दूसरे से कह ही रहे थे वे लोग भी :

“देखते हो भाई ।” एक ने कहा ।

“सब देख रहा हूँ । बोलने की ज़रूरत नहीं है । हालांकि कांग्रेस सरकार ने काफी डोर खींच रखी है परन्तु फिर भी अकड़-फूँ गई नहीं अभी तक ।”

“भाई पुरानी आदत है । एक बार आदत जो पड़ जाती है उसे छोड़ना बहुत कठिन हो जाता है ।” उत्तर दिया ।

“और उस लाल पगड़ी वाले को देख रहे हो लोगों पर कितना लाल-तेज हो रहा है ? जाने अपने को क्या समझता है । जरा-सी वर्दी के जोश में आकर अपने को तीसमारखाँ शमस बैठते हैं ।” घृणा की दृष्टि से देख कर कहा ।

“हाँ ! ज़रा भीड़ हो रही है । वहाँ पर पहुँचना मुश्किल है । अगर कहीं मैं वहाँ होता तो इसे डाटे बिना नहीं रहता ।” कांग्रेसी साहब ने कहा ।

“अरे भाई पुन ही तो है । ऐसा भी क्या है ? लोगों को चलने ही नहीं देना । यहाँ पिस-पिस कर जान निकली जा रही है । कोई टूट थोड़े ही जायेगा । और टूट जायेगा तो ऐसा कमज़ोर बनाया ही क्यों था ?”

फिर इन्तज़ाम करने वालों पर टीका होनी शुरू हो गई । नाक-भौं चढ़ा-चढ़ा कर लोगों ने कहना प्रारम्भ किया :

“क्या खाक इन्तज़ाम होता है इन मेलों का ?” नाँक चढ़ाकर आँखों से चश्मा उतारते हुए एक ने कहा ।

“हाँ ! पता तो था ही कि इतना बड़ा मेला होगा । आखिर कुम्भ का मेला है । फिर क्या ज़रूरत थी कि नावों का ही पुल बनवाया गया । लोहे का पुल नहीं बनवा सकते थे क्या ? चाहे टेम्परेरी ही बनवाते लेकिन बनवाना लोहे का ही पुल चाहिये था ।”

“और क्या ? इतना रुपया आता है ।” ज़रा भीड़ में अपने को सँभालते हुए तीसरे ने कहा ।

“और हज़म करके डकार भी नहीं लेते । ऐसे पाजी होते हैं कि बस क्या कहूँ ?” चौथा बोला ।

“रहने दो भाई ! हम तो जानें चलो लौट ही चलें । अब आगे जाना मुश्किल ही मालूम होता है । इतनी भीड़ को चीर कर जाने से कोई लाभ नहीं ।”

“चलो !” उसके साथी ने कहा ।

कुछ लोग इसी प्रकार लौट गये । धीरे-धीरे पहिले से भीड़ कुछ कम हुई । सरोज ने शीला का हाथ पकड़ा और साहस करके आगे बढ़ा । सरोज ने शीला को अपने आगे कर लिया । आप कुछ रुक-रुक कर भीड़ को रोकता हुआ चलने लगा । इसी प्रकार दोनों उस भीड़ में आगे बढ़े ।

इतने में ही एक बड़े ज़ोर का धक्का लगा और एक स्त्री धक्का खाकर सरोज के आगे बड़े ज़ोर से आ गिरी । उसके मुँह से एक आह निकली । उसके वस्त्र फटे हुए थे । कोई भिखारिन-सी मालूम देती थी ।

सरोज ने साहम करके पीछे की भीड़ को रोका । शीला ने पीछे मुड़ कर उसे उठा लिया । चोट काफी आ गई थी उसके । चलना असम्भव था और यहाँ पर रुका भी नहीं जा सकता था । सरोज की क्या सामर्थ्य थी भला जो इस भीड़ को रोक पाता ।

थोड़ा बिलम्ब होते ही जमघट आगे को बढ़ा, परन्तु सरोज ने साहस नहीं छोड़ा । शीला डर गई उस भीड़ और उस भिखारिन की दशा को देखकर ।

“आप क्या कर रहे हैं ? देखिये कितनी भीड़ है ? जल्दी कीजिये । आप भीड़ को व्यर्थ ही रोकने का प्रयत्न कर रहे हैं ।” शीला ने कहा ।

“धैर्य से काम लो शीला ! देखो इसके मुँह को अरे ! इसकी तो टाँग भी शायद टूट गई है ।” सरोज बोला ।

“भाग्य से दो स्वयंसेवकों ने भी इस घटना को देख लिया और उचित अवसर पर सरोज को सहायता मिल गई । सरोज ने स्त्री को गोद में उठा लिया और शीला को लेकर पुल पर पहुँच गया । पुल के शुरू में जितनी भीड़ थी उतनी आगे चल कर नहीं थी । पुल के बीच में काफी उछड़ी थी ।

अभी तक सरोज ने उस स्त्री के मुख की तरफ नहीं देखा था । पुल पार करके ये लोग ऊपर के रास्ते से होते हुए, तांगों के पास पहुँच गये और बड़ी फुर्ती से उसे अस्पताल में ले गये ।

स्त्री बेहोश हो गई थी । स्ट्रैचर पर लिटा कर सरोज ने देखा... “अरे ! शीला ! भला कहीं देखा है इस स्त्री को ? कुछ पहिचानती हो ?”

शीला तुरन्त पहिचान गई, “हाँ हाँ, अभी उसी दिन तो देखा था ।”

“भला कहाँ ?” सरोज ने पूछा ।

“भीमगोड़े के सामने गंगा के किनारे गाने वाली यही तो स्त्री थी ।” शीला ने पहिचानते हुए कहा ।

सरोज समझ गया । उसका आर्कषण भी एक कलाकार के नाते उसकी ओर भुक्त गया । वह उससे कंठ-स्वर की ओर पहिले से ही आकर्षित था ।

“कहिये डाक्टर साहेब ! चोट ज्यादा तो नहीं आई है । कोई ख़तरे की बात तो नहीं है ।” सरोज ने डाक्टर के देखने पर पूछा ।

“नहीं कोई ख़ास बात नहीं है ? ज़रा-सी बेहोशी है । यही कुछ अच्छा नहीं है । पैर की चोट तो बहुत शीघ्र अच्छी हो जायेगी । कहीं

हड्डी में चोट नहीं आई है। एन दूसरी दवा देता हूँ, इसके चार बार पीने से बेहोशी भी दूर हो जायेगी। लेकिन हाँ। आप इसको क्या यहीं छोड़ना चाहते हैं? देखिये यदि यहाँ रही तो बड़ा मुश्किल है। क्योंकि साफ़ बात यह है कि आप देख ही रहे हैं कि कितने मरीज़ आ रहे हैं। यहाँ इसकी कोई देख-भाल नहीं हो सकेगी।

इसकी देख-भाल के लिये ..।”

“आप चिन्ता न कीजिये डाक्टर साहेब ! मैं इसे अपने साथ ले जाऊँगा।” सरोज ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

“अपने साथ !” शीला ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा।

“हाँ क्यों? जब ठीक हो जायेगी तो बेचारी चली जायेगी।... अच्छा शीला... देखो यहीं सामने 'टैक्सी (किराये की कार) मिलती हैं। ज़रा एक अच्छी-सी टैक्सी ले आओ?” सरोज ने कहा।

दवा लेकर दोनों कार से रवाना हो गये। इस भीमगोड़े के पास गंगा-किनारे गाने वाली ललिता को उन्होंने अपने साथ कार में सँभाल कर बिठना लिया।

“अच्छा अब चलना कहाँ है?” शीला ने पूछा।

“कनखल के रास्ते से तो आज कार जा नहीं सकेगी।” सरोज बोला।

“क्यों?” शीला ने पूछा।

“भीड़ की वजह से तांगा, कार वगैरह बंद हैं सरकार !” ड्राइवर ने स्टेयरिंग पर हाथ रखने हुए कहा।

“तब फिर?”

“काँगड़ी-गुरुकुल चने चलते हैं अपने डेरे पर।”

“यही ठीक रहेगा।” शीला बोली।

शीघ्र ही कार काँगड़ी गुरुकुल, ज्वालापुर पहुँच गई।

जेलर साहेब यहीं पर एक टेंट में ठहरे हुए थे। पुराने आर्यसमाजी होने के नाते आप प्रति वर्ष यहाँ के वार्षिकोत्सव पर आया करते थे।

: १६ :

वह स्त्री अभी तक बेहोश थी। दो खुराक दी जा चुकी थीं। तीसरा खुराक का समय हो रहा था।

“अच्छा हां शीला ! देखो बहुत देर हो गई। माताजी इंतज़ार कर रही होंगी। तुम जाकर कार से हो आओ...और हाँ देखना ज़रा जल्दी ही लौटना। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा।”

“अच्छी बात।” कह कर शीला चली गई।

तीसरा खुराक पीकर बीमार स्त्री के बदन में एक हरकत हुई। एक हाथ इधर से उधर डाला और हाँठों को एक दो बार चलाया।

सरोज की जान में जान आ गई। अब उसे विश्वास हो गया कि वह बच जायेगी। उसके मर जाने का भय दूर हो गया। वह अब प्रसन्न था। उसने अपना इन्सानियत का फ़र्ज पूरा कर दिया। उसे गर्व भी था।

पिताजी और माताजी जलमे में गये हुए थे। श्री नारायण स्वामी का व्याख्यान था। पिंडाल बिल्कुल शांत था। चारों ओर शांति दिखाई दे रही थी।

इतने में शीला लौट आई। उसने आने में देर नहीं की।

“बड़ी जल्दी आ गई।” सरोज ने पूछा।

“हाँ ! माताजी तो पहिले से ही तैयार थीं।” शीला बोली।

“किस बात के लिये ?” सरोज ने पूछा।

“यहाँ आने के लिए। आज उन्होंने जेलर साहेब को यहाँ आने का वचन दिया था।”

“अच्छा !” सरोज बोला।

“वह ज़रा पिंडाल की तरफ चली गई हैं। लेक्चर ख़त्म होने पर आयेंगी।” “आज माताजी आर्यसमाज का लेक्चर सुनने के लिये आई हैं।” सरोज को बड़ा आश्चर्य हुआ।

“चली आई हैं, इसका यह मतलब नहीं कि वह आर्यसमाजी हो गई हैं । वह तो सनातन धर्मी ही थी और सनातन धर्मी ही रहेंगी ।” शीला मुस्करा कर बोली ।

“मैं तो समझता हूँ कि तुम भी अब आर्यसमाजी होती जा रही हो ।” अकड़कर सरोज बोला ।

“क्यों ?” शीला ने पूछा , “और कैसे ?”

“क्यों क्या ? मैंने कोई बात मुँह से निकाली नहीं कि तुमने बहस करनी शुरू कर दी । इस लिए । आर्यसमाज की यही तो परिभाषा तुमने एक दिन प्रस्तुत की थी ।”

दोनों मुस्कुरा दिये ।

“अच्छा अब उस देवि का हाल कैसा है ? कैसी दशा है अब ?”

“चौथी खुराक के पीने पर जरूर ठीक हो जायेंगी । अभी-अभी हाथ चलाया था और होठ भी फड़के थे ।” सरोज ने बताया ।

“कोई ज्यादा चोट नहीं आई है ।”

“फिर भी तो...देखती नहीं हो बेचारी कितनी कमजोर हो रही है ? इसके लिये तो थोड़ी-सी चोट ही बहुत काफी हैं । इतने जर-जर शरीर पर इतनी चोट बहुत बड़ी चोट है ।”

“अच्छा देवो सरोज ! एक बात कहती हूँ । एक बात पर ध्यान दो ।” कुछ गम्भीरता पूर्वक शीला ने कहा ।

“कुछ बात भी है ?” सरोज ने पूछा ।

“देखो इसके हाथ में जो धोनी है वह कितनी मैली और फटी हुई है । लेकिन इसने गिरते-गिरते भी इस धोती को नहीं छोड़ा । मैं वहीं से इस बात को मार्क कर रही हूँ कि इसने अपनी जान बचाने की तो परवाह की नहीं और इस धोती को बचाने की परवाह की । तुमने ध्यान दिया इस बात पर ।” शीला ने गम्भीरता के साथ कहा ।

“तुम्हें यही बातें सूझती रहती हैं । बड़ी मनोविज्ञान की धुरंधर

बन गई हो ।” मुस्करा कर शीला का हाथ से अपनी ओर खींचते हुए कहा ।

“तुम्हें तो हर समय मज़ाक सूझता है । अच्छा मैं इसकी धोती को देखूँगी अवश्य, कि इसमें क्या है ? इसमें अवश्य कुछ राज है, वरना यह इसे कभी की छोड़ देती ।”

होश में आने पर देखना । दिखलाने में उसे क्या आपत्ति हो सकती है भला ?”

“क्यों ? कोई हम इसमें से कुछ छुटा लेंगे ?” कहते हुए शीला ने धोती अलग कर ली । सरोज मना करता रह गया । परन्तु शीला ने एक बात भी उसकी न सुनी ।

धोती तमाम फटी थी । उसमें कुछ भी नहीं था । केवल दो कोनों में गाँठें लगी हुई थीं । शीला ने पहिली गाँठ खोली तो उसमें दो सूखे हुए पेड़े बँधे थे । कोई विशेष आश्चर्य की बात नहीं थी यह शीला के लिए और सरोज को भी उसे देख कर कोई आश्चर्य नहीं हुआ । परन्तु ज्योंही दूसरी गाँठ खोली तो उसमें एक चित्र था । चित्र देखते ही शीला ठगी-सी रह गई । उसका दिल धक-धक करने लगा ।

वह सीधी डेरे से बाहर चली आई । उसने चित्र को अच्छी तरह से देखा । खूब बिजली की रोशनी में एक वस्ती के नीचे ले जाकर देखा । चित्र पंकज का था । वही चित्र था जिसकी पद्मा पूजा किया करती थी । उसकी कुछ समझ में न आया ।

शीला ने पेड़ों को फिर ध्यान से देखा । बहुत सूखे थे । दोनों पेड़े जुड़ कर एक हो गये थे ।

यकायक उसे अपने पिछले स्वप्न का ध्यान हो आया । उसने देखा था वह हरिद्वार में कुम्भ के मेले पर अपनी माँ से बिछुड़ गई थी ।—

पेड़े लिये थे एक आने के दो और उन्हें नहाने के बाद खाने को उसकी माँ ने कहा था ।—

तब क्या बीस वर्ष से ये पेड़े इसी तरह इस धोती के पल्ले में बँधे हुए हैं ?—

फिर विचार आया कि...नहीं नहीं...मैं भी जाने क्या-क्या ऊट-पटांग बातें सोचने लगती हूँ ? बेचारी भिखारिन है कहीं की । किसी ने दिये होंगे सो पल्ले में बाँध लिये हैं ।—

लेकिन यह चित्र ! यह बिलकुल चित्र वही है जिसे माँ पूजा करती हैं ।

चित्र बहुत धुँधला हो गया था परन्तु फिर भी काफ़ी साफ़ था ।

फिर विचारने लगी कि किसी और का चित्र होगा । यह वह चित्र नहीं है । धुँधला होकर कुछ-कुछ उसका आभास होने लगा है !—

यह वह चित्र नहीं हो सकता !—

कुछ भी सही, परन्तु इतना सत्य ही है कि इस स्त्री का जीवन विचित्र है । इसे यों ही साधारण रूप से टाला नहीं जा सकता ।

किसी प्रकार मन को समझा लिया, परन्तु शंकायें दूर नहीं हुईं । पेड़ों वाले अपने स्वप्न को इस चित्र के साथ मिलाने में कोई तुक नहीं बैठती थी ।

फिर भी शीला का दिल उस स्त्री की ओर खिंचे बिना न रह सका । अन्दर आई तो अभी तक वह बेहोश पड़ी हुई थी । चेतना-शक्ति उसके अन्दर धीरे-धीरे प्रवेश कर रही थी ।

शीला पास पड़ी हुई कुर्मी पर बैठ कर बड़े गौर के साथ उस स्त्री के मुख को देखने लगी । शीला इस समय बहुत ही गम्भीर थी और आप-से-आप उसके नेत्रों में पानी छलछला आया था ।

“क्या देख रही हो शीला ?” सरोज ने भी कुछ स्तम्भित-सा होकर पूछा ।

“कुछ नहीं । यों ही देख रही थी ।”

शीला के हृदय की धड़कन बढ़ने लगी । उसे अपना स्वप्न सत्य-सा लगने लगा । उसने देखा कि उसकी अपनी शक्ल, बिलकुल उससे

मिलती थी। बहुत दुर्बल थी वह स्त्री, परन्तु मुँह का बनाव बिलकुल एकसा था। कोई भी तो अन्तर उसे नहीं दिखलाई दिया दोनों में। वही नाक, वही आँखें, वही होठ, वही मस्तक, वही ठोड़ी, सब कुछ वही तो था।

एक बार शीला फिर बाहर चली आई। कितनी ही देर तक इस बार बाहर घूमती रही परन्तु बात की कोई तुक नहीं बैठती थी।

उसे अपना विचार पागलपन-सा प्रतीत होने लगा। देर होने पर सरोज भी बाहर आ गया और यह सीधा शीला के पास जा पहुँचा।

“यहाँ क्या कर रही हो शीला?” सरोज ने पूछा।

“कुछ नहीं।” शीला ने कुछ सकपकाये से स्वर में कहा।

“अच्छा धोती के पल्लों में भला क्या निकला था?” सरोज ने उसके भाव को ताड़ कर कहा।

“एक पल्ले में तो पेडे थे ..” शीला इतना ही कहने पाई थी कि सरोज उसके हृदय का भाव समझ गया।

“शायद इन पेड़ों का भाव तुमने अपने देखे हुए स्वप्न से भिड़ा दिया होगा। बड़ी बावली हो शीला! भला यह भी कोई बात हुई!” उसने शीला की कमर थपथपाते हुए कहा।

शीला चुप रह गई। उसे अपनी बेवकूफी पर शर्मिन्दा-सा हो जाना पड़ा। उसने सोचा कि शायद उसने अवश्य बेवकूफी की है। परन्तु फिर भी वह बराबर उस स्त्री की ओर खिंची जा रही थी। मन चाहता था कि यदि यह किसी तरह से बोल पड़े तो मैं फौरन ही इससे तमाम हाल पूछ लूँ।

इसके बाद, फिर दोनों अन्दर चले आये। शीला से तो सरोज ने ज़रूर कह दिया, परन्तु कुछ शुबहा उसे भी होने लगा था। उसने भी अन्दर आकर शीला के मुख से उसके मुख का मिलान किया। दोनों बिलकुल एक थे। एक-सी नाक, एक-सी आँख, एक-सी ठोड़ी और मस्तक तो बिलकुल एक ही था।

सरोज स्वयं बेवकूफ बन गया । । कुछ अजीब माजरा था ।

फिर सोचा नहीं, नहीं, जी यह खयाल-ही-खयाल है । बेकार की बात है । ऐसा भी भला कहीं हो सकता है ।

“चौथी खुराक आपके नहीं दी शायद अभी सरोज बाबू !” शीला ने पूछा ।

अभी आधा घंटा है उसके देने में और हां होश में आते ही कुछ पूछ मत बैठना इनसे ।” अब सरोज के मुँह से ‘इससे’ शब्द के स्थान पर स्वयं ही ‘इससे’ निकल पड़ा । वह ‘इससे’ नहीं कह सका ।

‘हाँ तो क्या केवल पेड़े ही थे ? देखूँ ज़रा उन पेड़ों को ।’

शीला ने पेड़े सरोज के हाथ में देते हुए कहा, “एक और भी चीज़ थी ।”

“वह क्या था ?” सरोज ने पूछा ।

“उसी ने तो मुझे बेवकूफ बना दिया है सरोज ! मेरा स्वप्न, स्वप्न कर दिया । कुछ भी नहीं समझ पाई ।” स्तम्भित सी होकर शीला ने कहा ।

सरोज ने पेड़े देखे तो मालूम हुआ कि पेड़े बोल-बोल कर कह रहे हैं कि उनको उमी पल्ले में बँधे बीस वर्ष हो चुके हैं । सचमुच ये वही पेड़े हैं जो उमने एक दिन शीला के लिए खरीदे थे ।

“हां और क्या था शीला ?”

शीला ने चित्र सरोज के हाथों में दे दिया । सरोज इस चित्र को बिलकुल नहीं जानता था । वास्तव में पद्मा के पूजा के कमरे में कोई नहीं जाता था । केवल तीन ही आदमी जानते थे इस रहस्य को । एक शीला, दूसरे विनोद बाबू और तीसरी पद्मा स्वयं थी ।

“यह किसका चित्र है ?”

“देखने में यह चित्र बिलकुल पिताजी का सा मालूम पड़ता है ।” शीला ने गम्भीरता पूर्वक कहा ।

“मैं नहीं समझा शीला !” सरोज ने उत्सुकता से पूछा ।

“सरोज बाबू ! मेरी माँ पूजा किया करती है तुम जानते ही हो । वह किसी देवता की मूर्ति को सामने रखकर पूजा नहीं करती ।”

“फिर !”

“बिलकुल ऐसा ही एक चित्र है जिसे सामने रखकर वह पूजा किया करती है ।” शीला बोली ।

“समझा...अपने पति के चित्र को पूजती हैं ।” सरोज ने कहा ।

“हाँ ।”

“परन्तु यह चित्र इनके पास कहाँ से आया ?”

“यही तो आश्चर्य है ।” शीला ने कहा । “इसी ने तो मुझे परेशान करके किसी निश्चय पर पहुँचने से रोक दिया ।”

“नहीं शीला ! इस चित्र में और उसमें कुछ अन्तर अवश्य होगा ।”

“अन्तर केवल इतना ही है कि वह अभी तक सुन्दर बना हुआ है और यह पुराना पड़ गया है ।” शीला ने दृढ़ता पूर्वक कहा !

“नहीं इसमें धुँधले होने पर कुछ उसका आभास मिलने लगा होगा ।” अब तो दोनों ही बातें बेसूद हो गईं । खूब रही यह भी ।”

दोनों डेरे से बाहर चले आये । दोनों ने आपस में इधर-उधर की बातें करके इस बात को भुला देना चाहा, परन्तु बात दिमाग पर इतनी जम चुकी थी कि दूर नहीं हो सकी ।

“चलो दवा का समय शायद हो गया ।” शीला ने कहा ।

“हाँ अभी कुछ मिनट है ।”

“चलो अच्छा अन्दर चलें ।”

फिर दोनों डेरे में चले आये । इतने में सरोज की माँ जलसे के पिडाल से चली आई और सीधी अन्दर ही चली गई ।

“अरे यह कौन है ?” आश्चर्यचकित होकर पूछा ।

“एक स्त्री है माँ ! भीड़ में इस बेचारी को चोट आ गई । मैं इसे आने साथ ले आया कोई गरीब स्त्री मालूम होती है ।” सरोज ने कहा ।

“अभी तक बेहोशी नहीं टूटी। डाक्टर ने कहा था कि चौथी खुराक पर छूट जायेगी। अब थोड़ी ही देर में मैं चौथी खुराक खिलाऊँगा इन्हें।” सरोज ने कहा।

सरोज बराबर अपनी बात कहता गया, परन्तु उसकी माँ बिल्कुल शांत थी। धीरे-धीरे वह ललिता के पाम गईं और उमी खाट पर बैठ गईं। ज़िम पर वह पड़ी थी। उन्होंने डेरे की बत्ती को जला दिया।

बड़े ध्यान से उसका मुँह देखा।

“वही है !” धीरे से उनके मुँह से निकला।

“तुम पहिचानती हो माँ इन्हें।” शीला ने धीरे से पूछा।

“हाँ !” एक लम्बी साँस लेकर माँ ने कहा। “क्या दशा हो गई है वेचारी की ?” ... “चौथी खुराक दो इन्हें सरोज। ... जल्दी होश में लाओ बेटा !” तनिक उतावलेपन से माँ ने कहा।

“अभी दो मिनट हैं माताजी !”

दो मिनट पहिले ही दे दो बेटा ! जल्दी करो। देर मत करो। तेरी यह दशा ललिता ! मेरे बार-बार कहने पर भी तू नहीं रुकी। तूने एक बात भी नहीं सुनी।” ये बातें धीरे से मुँह से निकल गईं।

सरोज केवल इतना जान पाया था कि उसे गोद लिया गया है और वह लावाग्नि है। कभी उसकी माँ का नाम तक भी उसे नहीं बतलाया गया था।

“यह कौन है माँ जल्दी बतलाओ !” दवा पिला कर सरोज ने उत्सुकता से पूछा।

“तेरी माँ, बेटा ? तेरी माँ हैं यह ललिता।”

“मेरी माँ... मेरी माँ, माँ.... माँ... !” सरोज अपने को नहीं सँभाल सका।

“चुप रहो बेटा ! बिल्कुल चुप... देखते नहीं क्या दशा है उनकी ? इतनी कमजोरी में तुम्हें पाकर कहीं इनके प्राण न निकल जायें।”

शीला उधारी-सी रह गई। क्या-से-क्या हो गया ? कहाँ तो वह पेड़ों की बात और कहाँ वह सरोज की माँ।

शीला ने एक लम्बी साँस ली। एक आँसू आया परन्तु उसने उसे रोक लिया। उसे इममें भी संतोष था कि आज इस वहाने सरोज की माँ मिल गई।

शीला बहुत खुश थी। वह हँस पड़ी अपने अन्दर-ही-अन्दर।

चौथी खुराक ने वास्तव में पूरा असर किया और पीने के दस ही मिनट बाद ललिता ने आँखें खोल दीं।

चकित-सी होकर चारों ओर देखा और फिर उठने की कोशिश की।

“उठो मत माँ !” सरोज ने धीरे से कहा।

“मैं कहाँ हूँ बेटा !” कितना प्यारा था यह बेटा शब्द ? मानो उसने पहिचान लिया सरोज उसका ही बेटा है।

“अपने ही घर हो माँ !”

इतने में सरोज की माँ ने ललिता के पास आकर धीरे से अपनी ओर उसका मुँह करके कहा, “कुछ पहिचानती हो ललिता ?”

“हाँ बहिन...”

“तुम्हें कितना मना किया था जाने के लिये ललिता ? लेकिन तुमने उस समय एक नहीं सुनी ..”

“मेरा बेटा कहाँ है बहिन ? मेरा बेटा...?”

“यह सामने ही तो हैं तुम्हारा बेटा।”

“इतना बड़ा हो गया बेटा।”

“आज बीस वर्ष हो चुके ललिता !” कुछ याद है।

ललिता ने नहीं की गर्दन हिला दी।

परन्तु आज कितनी खुश थी ललिता।

इतने में पद्मा भी वहाँ आ गई। अब जलसा खत्म हो चुका था। पद्मा सीधी कमरे में चली आई। आते ही बोली, ‘शीला रानी अब

चलें न..." कुछ और आगे बढ़ी तो..."अरे !...कौन...कौन...ललि...ता..."।

यह क्या पद्मा ने सब के देखते-देखते ललिता के पैरों पर सिर रख दिया। वह रो रही थी। उसकी आँखों से पानी बह रहा था। वह सिसकियाँ ले रही थी।

"कौन बहन पद्मा !" ललिता ने प्यार से पद्मा को सीने से लगा लिया। वह अब तनिक भी पागल नहीं थी।

"मुझे क्षमा करदो ललिता। एक पापिन को क्षमा कर दो !" उसने सिरकिमाँ भरते हुए कहा।

देख कर सब अवाक् रह गये। शक्ति न होते हुए भी ललिता ने पद्मा को सीने से लगा लिया।

"बहिन भाग्य का बदा कौन टाल सकता है ?" "तुम इन्हें जानती हो।" सरोज की ओर इशारा करके, "और देखो इसे शायद तुमने नहीं पहिचाना होगा पद्मा ! यह तुम्हारा ही लड़का है।" पद्मा ने चकित होकर प्यार से सरोज को देखा।

अधिक बोलने की शक्ति अब ललिता में नहीं थी। धीरे से लेट गई।

केवल ललिता और पद्मा ही कुछ समझ पाये थे। और सब-के-सब बिलकुल चुपचाप थे।

सरोज और शीला बड़े आश्चर्य में थे ! शीला ने सरोज को एक ओर करके कहा, "वह चित्र अवश्य उनका ही था।"

"यही मालूम होता है अब तो।"

पद्मा तो कुछ कह ही नहीं सकती थी। सरोज को वह इतना और क्यों करती थी यह उसकी समझ में आज ही आया। आखिर वह उसका अपना ही तो पुत्र था।

"अच्छा बहिन एक बात बतलाओ।" जेलर साहेब की पत्नी ने पूछा।

“क्या बहिन ?”

“विमला आज कल कहाँ है ?”

विमला का नाम सुनते ही ललिता रो पड़ी। उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली।

“क्यों क्या हुआ बहिन ?”

“उसने मुझे पागल कर दिया बहिन ! आज न जाने किस तरह मैं बोल रही हूँ तुमसे। मैं तो पागल हो गई थी बहिन। विमला का नाम मत लो मेरे सामने, नहीं तो मैं फिर पागल हो लाऊँगी और यह खुशी सब हवा हो जायेगी।”

ललिता शांत हो गई थोड़ी देर के लिये। फिर अपने आप ही आप बोलने लगी। “वह मेरा साथ छोड़ गई बहिन ! यहीं, इसी हरिद्वार की भेंट चढ़ा दी अपनी बेटी मैंने।”

“क्या...”

“बहिन आज बीस वर्ष हुए, वह खो गई थी बहिन ! उसके लिये मैं पागल होकर कहाँ-कहाँ नहीं भटकी ! परन्तु उसका कहीं पता नहीं चला !

उसके पेड़े आज तक मेरी धोती में...”

“पेड़े...पेड़े...!!” शीला के मुख से जोर से निकल गया।”

“माँ तुम मेरी माँ हो...मेरी माँ...!”

“विम...ला.. !”

एक बार ललिता फिर बेहोश हो गई, लेकिन यह बेहोशी ज्यादा देर की नहीं थी। पद्मा एक ओर खड़ी यह स्वप्न-सा देख रही थी।

बीस वर्ष पहिले ही ग्रहण के अवसर पर वह शीला को ले गई थी हरिद्वार से। उस समय कुछ विमला जैसा ही नाम बतलाया था शीला ने, परन्तु वह कुछ अधिक स्पष्ट नहीं था।

पद्मा ने आज तक अपनी ही बेटी को पाला था। सरोज और शीला ललिता के जुड़वाँ बच्चे थे, जिनका जन्म जेल में हुआ था।

*

*

*

“देखो भैया ! इस बार मैं फर्स्ट आऊँगी।” शीला ने सरोज का हाथ खींचते हुए कहा।

“तू ही आ जाना बाबली ! लेकिन मेहनत करनी होगी यूँही काम नहीं चलेगा।” कहकर सरोज मुस्करा दिया।

“अच्छा चलो चाय .।”

“अच्छा चलो चाय।” मुँह बना कर सरोज बोला “फिर चाय... इस वक्त चाय...जब देखो तब चाय...सिनेमा को देर हो...।”

“फिर सिनेमा...हर वक्त सिनेमा, जब देखो तब सिनेमा...चाय ठंडी हो रही है और .।”

“अच्छा चल।” सरोज ने नाक सकोड़ते हुए कहा। “बड़ी परेशान करती है शीला।”

दोनों जाकर चाय पीने लगे।

चाय के बाद शायद सिनेमा भी जरूर गये होंगे।

* समाप्त *

